पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

AUG 2025

अंक - 14

476

संविधान का संक्षिप्त प्रारूप 3

“... जब राष्ट्रपति के ही अधिकार तंत्र ने छीन लिए, तो वैसी स्थिति में लोक क्या करे। हमने एक संविधान सभा बनाई और संविधान सभा को ही तंत्र ने ताकत से दबा दिया, तब लोक के सामने विद्रोह के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं बचता है, जो उचित मार्ग नहीं है। ...”

माँ संस्थान परिचय और सक्रियता 5

प्रश्नोत्तरी 7

श्री कैलाश आदमी
पत्रकार और संपादक
निर्दलीय समाचार पत्र
भोपाल

प्रकाशन की तिथि - 31-07-2025 पोस्ट की तिथि - 16-08-2025

सिंहावलोकन

8 **संविधान सभा की आवश्यकता**

10 **पत्रोत्तर**

12 **हिन्दू-मुस्लिम संबंध**

साथियों की कलम से -

14 **सेवा और व्यवसाय – वैचारिक भिन्नता का मूल्यांकन**

जब छात्र मोहरे बन जाते हैं: रोहित से राहुल तक – ज्ञानेन्द्र आर्य

15 **ज़ूम कार्यक्रम का सारांश**

17 **जीवन पथ (उपन्यास)**

प्रधान संपादक
बजरंग लाल अग्रवाल
(बजरंग मुनि)

संपादक मण्डल
नरेन्द्र सिंह
विपिन तिवारी
विपुल आदर्श

सहयोगी संपादक
ज्ञानेन्द्र आर्य

सदस्यता नियमन
संजय गुप्ता 872669477
कुशल दुबे 7999934238

सज्जा
लाल बाबू रवि

वितरण एवं मुद्रण सहयोग
रबीन्द्र विश्वास

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

मुख्य कार्यालय-
ज्ञानयज्ञ परिवार आश्रम
रामानुजगंज छत्तीसगढ़ 497220
8318621282, 9630766001

लोक स्वराज अभियान
505 कृष्णा शिप्रा अजूरा अपार्टमेंट कौशांबी
गाजियाबाद 201012
9325683604, 9012432074

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

संविधान का संक्षिप्त प्रारूप

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

प्रस्तावित संवैधानिक व्यवस्था का एक प्रारूप मैं पिछले ज्ञान तत्व क्रमांक 475 में भारत की संपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में आई अनेक बुराइयों का कारण भारतीय संविधान को घोषित किया था, किंतु मैंने कोई विकल्प प्रस्तुत नहीं किया था। आज मैं इस असफल संविधान की जगह प्रस्तावित विकल्प पर चर्चा कर रहा हूँ-

22 जुलाई 2025 - मैं लंबे समय से यह बात कहता रहा हूँ कि तंत्र लोक का मैनेजर है। परंतु कल की चर्चा में विपिन तिवारी, पवन जय जी, वैद्य राज जी, श्रीकांत जी आदि ने यह प्रश्न उठाया कि लोक का स्वरूप क्या होगा, जिसके प्रत्यक्ष आदेश को तंत्र मानेगा। सच बात यह है कि मैं इन प्रश्नों का साफ उत्तर नहीं दे सका। यह हमें तरीका खोजना ही होगा कि लोक का भौतिक स्वरूप क्या माना जाएगा, जो समय-समय पर तंत्र को निर्देशित कर सकता है। पवन जी का भी प्रश्न था कि क्या हम संसद को लोक का स्वरूप न मान लें। संसद संविधान सभा है और तंत्र संसद के अंतर्गत कार्य करती है। यह प्रश्न भी बहुत गंभीर था। मैंने भी आज इस प्रश्न पर बहुत विचार किया। प्रश्न वास्तव में गंभीर है और इसका उत्तर खोजा जाना चाहिए। मेरे विचार में यदि हम संसद को संविधान सभा मान लें, तो फिर हमें कानून बनाने के लिए एक अलग से विधायिका बनानी पड़ेगी, क्योंकि तंत्र के तीन भाग होते हैं: न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका। यह तीनों तंत्र के अंतर्गत आते हैं, यह लोक का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इस तरह तंत्र हमारा मैनेजर होता है और संविधान सभा लोक का प्रतिनिधित्व करती है, अर्थात संविधान सभा हमारी पावर ऑफ अटॉर्नी होती है। यह लोक की अनुपस्थिति में लोक का प्रतिनिधित्व करती है। इस तरह संविधान सभा और विधायिका, अर्थात कानून बनाने वाली इकाई को अलग-अलग कर देना चाहिए। संविधान सभा और तंत्र दोनों मिलकर यदि कोई निर्णय करते हैं, तो लोक उस निर्णय को स्वीकार करेगा। लेकिन यदि दोनों के बीच में कोई विवाद होता है, इसका निर्णय जनमत संग्रह से होगा, अर्थात उस विवाद का निपटारा लोक करेगा। एक सुझाव यह भी था कि लोक का प्रतिनिधित्व राष्ट्रपति करते हैं, अर्थात राष्ट्रपति ही संविधान सभा हैं और विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका यह तीनों तंत्र हैं। यह सुझाव भी गंभीर है, परंतु दिक्कत यह आई कि जब राष्ट्रपति के ही अधिकार तंत्र ने छीन लिए, तो वैसी स्थिति में लोक क्या करे। हमने एक संविधान सभा बनाई और संविधान सभा को ही तंत्र ने ताकत से दबा दिया, तब लोक के सामने विद्रोह के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं बचता है, जो उचित मार्ग नहीं है। ऐसी मजबूरी से बचने के लिए ही मेरा यह सुझाव है कि संविधान सभा और विधायिका को अलग- अलग कर दिया जाए। विधायिका और कार्यपालिका को भी अलग-अलग कर दिया जाए। तंत्र के तीनों भाग स्वतंत्रता से कार्य करें और राष्ट्रपति को अधिक अधिकार संपन्न बनाया जाए। हम अपनी नई व्यवस्था में इस विषय पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं। आपके प्रश्न और सुझाव आमंत्रित हैं। हम वर्तमान दुनिया में प्रचलित लोकतंत्र के किसी संशोधित स्वरूप पर चर्चा कर रहे हैं।

मैंने ऊपर इस विषय पर चर्चा की थी कि लोक और तंत्र के आपसी संबंधों में लोक का प्रतिनिधित्व कौन करेगा? इस संबंध में मेरा विचार यह है कि लोक का प्रतिनिधित्व तीन इकाइयाँ मिलकर करेंगी। एक संविधान सभा, जो लोकसभा की तरह ही आम मतदाताओं के द्वारा सीधे चुनी जाएगी। दूसरा राष्ट्रपति, जो वर्तमान या किसी संशोधित प्रणाली से चुने जाएँगे। तीसरा तंत्र, जिसमें विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका तीनों का संयुक्त स्वरूप शामिल होगा। इन तीनों को मिलकर ही हम लोक के प्रतिनिधि के रूप में मानेंगे। तंत्र के रूप में दो तरह की सरकारें होंगी: एक केंद्र सरकार, दूसरी संघ सरकार। केंद्र सरकार के पास सिर्फ सुरक्षा, न्याय और विदेश होगा, अन्य सारे कार्य संघ सरकार देखेगी। केंद्र सरकार के पास पुलिस, सेना, वित्त, विदेश और न्याय विभाग होगा। अन्य सभी विभाग संघ सरकार के पास होंगे। केंद्र सरकार संपूर्ण संपत्ति पर अधिकतम दो प्रतिशत सुरक्षा कर के रूप में ले सकेगी, अन्य कर संघ सरकार अपनी आवश्यकता अनुसार ले सकती है। केंद्र सरकार की विधायिका में एक लोकसभा होगी और एक संघ सभा होगी। लोकसभा का गठन पुरानी पद्धति से बालिग मताधिकार से होगा एवं संघ सरकार के लिए अप्रत्यक्ष मतदान प्रणाली अपनाई जाएगी। अर्थात प्रत्येक व्यक्ति मिलकर परिवार का मुखिया चुनेंगे, परिवार मिलकर ग्राम सभा का निर्माण करेंगे, और इस तरह क्रमशः जिला, प्रदेश और संघ सरकार का गठन हो जाएगा। केंद्र सरकार की विधायिका के लिए जो संघ सभा बनेगी, उसका गठन संघ सरकार के द्वारा किया जाएगा। इस तरह विधायिका जो कानून बनाएगी, वह सुरक्षा और न्याय तक सीमित होगा और उसके हर कार्य में संघ सभा और लोकसभा की समान भागीदारी होगी।

संविधान सभा और केंद्र सरकार की विधायिका, दोनों ही आपसी सहमति के आधार पर संविधान संशोधन करेंगी। दोनों की सहमति के बाद, राष्ट्रपति की सहमति भी आवश्यक होगी और यदि किसी संवैधानिक मुद्दे पर इन तीनों के बीच में अंतिम सहमति नहीं बन पाती है, तब उस विषय पर जनमत संग्रह होगा। मेरी योजना के अनुसार लोकतंत्र का यह संशोधित स्वरूप दुनिया के लिए आदर्श बन सकता है।

23 जुलाई हम कई बार इस बात की चर्चा करते रहे हैं कि लोकतंत्र दुनिया में असफल हो रहा है। इस असफलता का कोई न कोई विकल्प खोजा जाना चाहिए। हम बार-बार यह भी चर्चा करते रहे हैं कि तंत्र को लोक नियंत्रित होना चाहिए। लोक मालिक और तंत्र मैनेजर होगा। लेकिन आज तक हम इस बात का उत्तर नहीं खोज पाए कि भौतिक स्वरूप में लोक का प्रतिनिधित्व कौन करेगा। लोकतंत्र का यदि कोई विकल्प है, वह विकल्प क्या हो सकता है। आज सुबह इस संबंध में मैंने एक पोस्ट लिखी है, जिस पोस्ट के अनुसार हम दुनिया में लोकतंत्र का एक नया विकल्प दे सकते हैं। जिसके अनुसार हम लोग और तंत्र की मिली-जुली व्यवस्था का एक भौतिक स्वरूप समाज के सामने रख सकते हैं। आप आज के विषय पर मेरे संक्षिप्त विचार उस पोस्ट में पढ़ सकते हैं। विषय बहुत ही गंभीर है। इस विषय पर आज रात 8:00 बजे से 9:30 बजे तक एक खुली चर्चा आयोजित की गई है। इस चर्चा में प्रारंभिक वक्ता के रूप में मैं, अर्थात बजरंग मुनि, रहूँगा और सब लोग बारी-बारी से स्वतंत्रतापूर्वक अपनी बात रख सकेंगे। साथ ही खुला प्रश्न-उत्तर भी रखा जाएगा। यदि आवश्यकता होगी, तो समय 10:00 बजे तक बढ़ाया जा सकता है। इस तरह मैं आप सबको आमंत्रित करता हूँ कि आप एक प्रस्तावित लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आज की खुली चर्चा में भाग लें।

24 जुलाई प्रातःकालीन सत्र। नई समाज व्यवस्था पर कल रात हम लोगों ने विस्तार से चर्चा की। कल सुबह मैंने उस चर्चा का एक प्रारूप आपके सामने रखा था। उस प्रारूप में दो संशोधन और किए गए। पहला संशोधन यह था कि संघ सभा का निर्माण एक राष्ट्र सभा के द्वारा किया जाएगा, अर्थात जिस तरह परिवार सभा ग्राम सभा बनाएगी, ग्राम सभा के द्वारा जिला सभा और जिला सभा के द्वारा प्रदेश सभा बनेगी, इस तरह प्रदेश सभाएँ मिलकर एक राष्ट्र सभा बनाएँगी। राष्ट्र सभा के द्वारा ही एक संघ सरकार का भी गठन होगा और एक संघ सभा भी बनेगी। एक दूसरा संशोधन यह हुआ कि जिस तरह विधायिका के दो भाग होंगे, एक लोकसभा और दूसरी संघ सभा, जिस तरह कार्यपालिका के दो भाग होंगे, एक संघ सरकार, एक केंद्र सरकार, इस तरह अब न्यायपालिका के भी दो भाग होंगे, एक केंद्रीय न्यायपालिका और दूसरी संघ की न्यायपालिका। विधायिका के द्वारा बनाए गए कानून का पालन करवाएगी और प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी भी देगी। यहाँ तक कि केंद्रीय न्यायपालिका संविधान द्वारा यदि कोई मौलिक अधिकारों के विरुद्ध संशोधन होता है, उस संशोधन को भी रिजेक्ट कर सकती है। इस तरह केंद्रीय न्यायपालिका को कुछ विशेष अधिकार भी होंगे। दूसरी ओर, संघ की न्यायपालिका, संघ सरकार के द्वारा बनाए गए कानून का पालन करवाएगी। यदि संघ सरकार संविधान के विरुद्ध कोई कानून बनाती है, तो संघ न्यायपालिका उस कानून को रद्द कर सकती है। इस तरह संघ की न्यायपालिका होगी। संघ की न्यायपालिका ग्राम पंचायत स्तर से लेकर केंद्र तक होगी और केंद्रीय न्यायपालिका भी अपनी आवश्यकता के अनुसार केंद्र से लेकर नीचे तक न्यायालय बना सकती है। कल रात 2 घंटे तक इस विषय पर बहुत गंभीर चर्चा हुई है और इस संशोधित प्रस्ताव को विचारार्थ स्वीकार कर लिया गया है। अब इस विषय पर एक महीने के बाद फिर से चर्चा होगी। मैं आज दोपहर के सत्र में इस विषय पर कुछ और लिखूँगा।

ऊपर मैंने नई समाज व्यवस्था की मॉडल पर एक पोस्ट लिखी थी। हम लोगों का पूरा का पूरा ग्रुप वर्तमान समस्याओं की चर्चा तक सीमित नहीं है। हम इन चर्चाओं का कुछ समाधान भी बताना चाहते हैं और उस समाधान को हम आगे बढ़ाने की शुरुआत भी कर रहे हैं। हमारी पूरी की पूरी समाज व्यवस्था दो महत्वपूर्ण बिंदुओं पर केंद्रित रहती है। पहली है व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता निष्कंटक रहनी चाहिए और दूसरी है कि व्यक्ति की सहजीवन की अनिवार्यता मजबूत और सुविधाजनक होनी चाहिए। असीम स्वतंत्रता और सहजीवन दोनों एक-दूसरे के विपरीत दिखते हुए भी दोनों का एक साथ जुड़ना अनिवार्य है और इस जोड़ को ही हम समाजशास्त्र कहते हैं। यह समाजशास्त्र वर्तमान में अपना प्रभाव खो रहा है, इसलिए अब एक नए समाजशास्त्र पर चर्चा हो रही है, जिसे कुछ समाज विज्ञानी बैठकर समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। ऐसे समाज विज्ञानियों की चर्चा का ही यह आधार है कि हम एक नए सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे को आपको दे पा रहे हैं। इस नई सामाजिक व्यवस्था में दो केंद्र होंगे। पहला, व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता की गारंटी यह केंद्र सरकार देगी और व्यक्ति के सहजीवन की मजबूरी का क्रियान्वयन संघ सरकार करेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में कोई बाधा पैदा होती है, तो उस बाधा को दूर करना केंद्र सरकार का दायित्व है। दूसरी ओर, व्यक्ति समाज के साथ जुड़कर रहने के लिए मजबूर हो जाए और इस मजबूरी में आने वाली कठिनाइयों को दूर किया जाए, व्यक्ति समाज के साथ सुविधापूर्वक जी सके, रह सके, इस प्रकार के आपसी संबंधों की सुरक्षा संघ सभा का कार्य होगा। संघ सभा अपराध नियंत्रण का कार्य नहीं करेगी और केंद्र सरकार व्यक्ति के सामाजिक जीवन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी। इन दोनों व्यवस्थाओं को अलग-अलग किस तरह किया जाएगा, यह पृथक्करण ही हम लोगों की सारी योजना में शामिल है। हम केंद्र सरकार और संघ सरकार को बिल्कुल अलग-अलग कर रहे हैं। संघ सरकार सामाजिक जीवन प्रणाली पर निरंतर सक्रिय रहेगी और केंद्र सरकार व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा तक सीमित होगी। केंद्र सरकार सुरक्षा कर के रूप में टैक्स लगा सकती है, लेकिन संघ सरकार तब तक कोई टैक्स नहीं लगाएगी, जब तक सबकी सहमति नहीं बनती है। दोनों ही व्यवस्थाएँ, केंद्रीय व्यवस्था और संघ की व्यवस्था, यह दोनों एक साथ मिलकर एक संविधान बनाएँगी, जो संविधान दोनों पर समान रूप से लागू होगा। इस तरह हम लोगों ने एक नई समाज व्यवस्था

बनाने का प्रस्ताव किया है और इस प्रस्ताव पर हम आपके सुझाव भी जानना चाहेंगे।

हमें 50 वर्ष लगातार सोचने में लग गए कि नई समाज व्यवस्था का प्रारूप क्या होगा। हमारे सामने एक विचित्र उलझन थी। यदि व्यक्ति को एक सीमा से अधिक स्वतंत्रता दी गई, तो व्यक्ति उद्दंड हो जाएगा और यदि व्यवस्था को ज्यादा अधिकार दे दिए गए, तो व्यवस्था में तानाशाही का बढ़ना निश्चित है, क्योंकि जहाँ भी अधिकार अधिक हो जाते हैं, वहाँ तानाशाही का खतरा है ही। ऐसा कोई संतुलित प्रारूप राज्य और समाज के बीच में नहीं बन पा रहा था, जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता और राज्य की तानाशाही के बीच में संतुलन बनाए जा सके। स्वतंत्रता के बाद राज्य ही शक्तिशाली होता चला गया, तो परिणाम यह हुआ कि राज्य धीरे-धीरे समाज व्यवस्था को समाप्त करता गया। राज्य धीरे-धीरे तानाशाही की तरफ भी बढ़ गया और समाज कुछ नहीं कर सका। इस खतरे से बचने के लिए हम लोगों को एक बहुत ही योजना बनाकर संतुलित प्लान आपके सामने प्रस्तुत करना पड़ा है। हम लोगों ने जो प्लान बताया है, इसमें हमने पूरा प्रयत्न किया है कि शक्ति राज्य की किसी इकाई के पास इकट्ठी न हो। शक्ति राज्य और समाज दोनों के बीच में बराबर रहे। दूसरी ओर, राज्य इतना कमजोर न हो जाए कि समाज में उद्दंडता बढ़ जाए। इन दोनों के बीच में ही हम लोगों ने नया प्रारूप बनाया है। हम लोगों ने पूरा प्रयास किया है कि किसी भी परिस्थिति में राजनीतिक सत्ता कहीं भी इकट्ठी न हो सके, बल्कि राजनीतिक सत्ता इस तरह संतुलित हो कि तानाशाही का खतरा न रहे। इसलिए हम लोगों ने कल आपके सामने एक प्रारूप रखा है।

ऊपर मैंने कल नई सामाजिक व्यवस्था पर दो-तीन बार चर्चा की। आज मैं अपने मित्रों को यह बात साफ कर देना चाहता हूँ कि हमारी कल और परसों की नई समाज व्यवस्था पर चर्चाओं का उद्देश्य सिर्फ विचार-मंथन है, विचार प्रचार नहीं। मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि मेरे मित्र इन बातों को निष्कर्ष मानकर समाज के बीच ले जाएँ। हमारे साथी जब भी समाज के बीच जा रहे हैं, तो वे इन विचारों पर चर्चा न करें, क्योंकि अभी यह सारे प्रस्ताव हम कुछ विचारकों तक सीमित हैं, अभी समाज के पास ले जाने के लिए नहीं हैं। हम तो समाज के सामने सिर्फ एक ही माँग रखेंगे कि राज्य संविधान संशोधन में ग्राम सभाओं को महत्वपूर्ण भूमिका दे तथा सामाजिक व्यवस्था में परिवारों को संवैधानिक अधिकार दे, परिवारों को स्वतंत्रता दे। साथ ही हम एक विचारकों का ग्रुप तैयार करेंगे और जो एक गंभीर विचारकों का ग्रुप तैयार हो रहा है, उस ग्रुप को मैंने कल और परसों के बीच प्रस्ताव दिया है। इसका मतलब यह है कि हम अभी लंबे समय तक इन प्रस्तावों पर चिंतन-मंथन करेंगे और जब चिंतन-मंथन करने के बाद कोई निष्कर्ष निकलेगा, तब वह निष्कर्ष समाज के सामने ले जाएँगे। इसलिए इस नई समाज व्यवस्था के प्रस्ताव को आपसी विचार-मंथन, तर्क-वितर्क तथा चिंतन तक ही सीमित रखना चाहिए। अभी वर्तमान परिस्थितियों में यह विचार सरकार के समक्ष रखने के लिए नहीं हैं। लेकिन विचारकों के बीच इस नई समाज व्यवस्था पर लगातार चिंतन-मंथन जारी रहना चाहिए।

माँ संस्थान परिचय और सक्रियता

हम नई समाज व्यवस्था में इस बात की चर्चा करेंगे कि राज्य व्यवस्था और सरकार के कार्य यह दोनों अलग-अलग होते हैं। व्यवस्था किसी संविधान के तालमेल से चलती है और सरकार किसी संविधान के अंतर्गत कार्य करती है। राज्य का अर्थ सरकार से लिया जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारत की व्यवस्था बिगड़ी और उस बिगड़ी हुई व्यवस्था का दुरुपयोग सरकार ने किया। भारत में स्वतंत्रता के बाद नेहरू, कम्युनिस्ट और मुस्लिम सांप्रदायिकता ने मिलकर एक ऐसी सरकार चलाई जिसने पूरे समाज को गुलाम बना लिया। जिसने वर्ग विद्वेष फैलाया। यह हमारी संवैधानिक व्यवस्था की गड़बड़ी थी जिसका दुरुपयोग उस सरकार ने किया। अब नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत की सरकार उस प्रकार की गड़बड़ियों को सुधार रही है। अब नेहरू परिवार, सांप्रदायिक मुसलमान और कम्युनिस्ट सत्ता से बाहर हैं किंतु राजनीतिक व्यवस्था में उन सब का अब भी बराबर का योगदान है। यही कारण है कि वर्तमान सरकार अच्छा कार्य करने के बाद भी अच्छे परिणाम नहीं दे पा रही है क्योंकि जब जड़ ही गड़बड़ है तो उसके फल कहाँ से अच्छे आएँगे। इसलिए हम चाहे लाख प्रयत्न कर रहे हैं लेकिन बहुत तेजी से सुधार नहीं हो पा रहा है। अब हम लोगों के सामने दो प्रकार की समस्याएँ हैं। एक यह है कि हम लगातार राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तन की चर्चा कर रहे हैं अर्थात वह व्यवस्था बदली जानी चाहिए जिसमें स्वतंत्रता से लेकर आज तक कोई सरकारी काम कर रही हैं। हम उस राजनीतिक व्यवस्था का विकल्प भी समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं और बदलाव के लिए जनमत जागरण भी कर रहे हैं। दूसरी ओर हम इस बात के लिए पूरी तरह सावधान हैं कहीं वर्तमान सरकार कमजोर न पड़ जाए क्योंकि इस सरकार के कमजोर पड़ते ही नेहरू खानदान फिर से हावी हो जाएगा जिसने हमें 70 वर्षों तक गुलाम बनाकर रखा। इसलिए हम दोनों दिशाओं में एक साथ सक्रिय रहते हैं। हम संवैधानिक और राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तन की भी बात करते रहते हैं और हम वर्तमान सरकार को लगातार शक्ति भी देते रहते हैं। इस तरह हमें दोनों दिशाओं में एक साथ सक्रिय होना पड़ता है। आमतौर पर लोग व्यवस्था और सरकार दोनों को एक समझ लेते हैं इसलिए भ्रम पैदा होता है। हम दोनों को अलग-अलग समझते भी हैं और अलग-अलग तरीके से प्रयास भी करते हैं। यही कारण है कि मैं प्रतिदिन तीन पोस्ट लिखता हूँ। उसमें प्रातःकालीन चर्चा में हमारी सामाजिक व्यवस्था परिवर्तन की बात होती है, दोपहर की चर्चा में आमतौर पर राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तन की बात होती है और शाम के सत्र में हम पिछली सरकार को किसी भी तरह से आने से रोकने के लिए लिखते हैं।

हम माँ संस्थान के इतिहास और वर्तमान पर चर्चा करेंगे। माँ संस्थान लगभग 70 वर्षों से भिन्न-भिन्न नाम के साथ लगातार सक्रिय है। माँ संस्थान ने प्रारंभ के 25-30 वर्षों तक हमारी समस्याओं की पहचान की और इस बात को खोजकर निकाला कि हमारे सभी समस्याओं की जड़ में दो बातें हैं। एक हमारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व्यवस्था में विकृति और दूसरा है हमारी संवैधानिक राजनीतिक व्यवस्था द्वारा समाज व्यवस्था का अतिक्रमण। बाद के 15-20 वर्षों तक हम लोगों ने इस बात का अध्ययन किया कि इन समस्याओं का समाधान क्या हो सकता है। तो हम लोगों ने यह पाया कि इन सभी समस्याओं के अलग-अलग समाधान होंगे अर्थात सामाजिक समस्या का समाधान है परिवार सशक्तिकरण, आर्थिक समस्या का समाधान है कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्य वृद्धि करके सरकार का अर्थव्यवस्था में अन्य हस्तक्षेप कम करना, धार्मिक समस्या का एक समाधान है कि हम पहचान प्रधान धर्म को कमजोर करके हिंदुत्व को वैचारिक संतुलनवादी हिंदुत्व की दिशा में ले जाना। और सब प्रकार की राजनीतिक समस्याओं का समाधान है लोक स्वराज प्रणाली। हमने आज से 5 वर्ष पूर्व तक समस्याओं के समाधानों पर भी अंतिम निष्कर्ष निकाल लिया था। अब हमारे सामने स्थिति यह थी कि यह कार्य कौन करेगा। तो 5 वर्ष पहले ऋषिकेश में बैठकर यह निर्णय हुआ कि यह कार्य माँ संस्थान शुरू करेगा। हम दो दिशाओं से कार्य करेंगे। पहले हम वैचारिक धरातल पर जन जागरण करेंगे और दूसरा जनता के बीच में जाकर जनता को सक्रियता का पाठ पढ़ाएँगे। इस तरह हम लोगों ने अब यह कार्य प्रारंभ किया है अर्थात हम दो दिशाओं से लगातार सक्रिय हैं। पहले हम धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए जन जागरण कर रहे हैं और दूसरा राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए हम सक्रियता का पाठ पढ़ा रहे हैं। इन सारे कार्यों को एक साथ करने के लिए माँ संस्थान ने देश भर में ज्ञान केंद्रों को मजबूत करना शुरू किया है। हम ज्ञान केंद्रों के माध्यम से सिर्फ तीन संदेश दे रहे हैं। पहला संदेश यह है कि ज्ञान केंद्र लगातार यह प्रयत्न करें कि भारतीय संविधान तंत्र की गुलामी से मुक्त हो और यह माँग करें कि संविधान संशोधन में ग्राम सभाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका हो और साथ में ग्राम सभाओं को उनके 29 अधिकार दे दिए जाएँ। हम ज्ञान केंद्रों के माध्यम से दूसरा संदेश यह दे रहे हैं कि हम लगातार परिवारों को संवैधानिक अधिकार देने की माँग करेंगे और आदर्श परिवार व्यवस्था पर समाज में जागृति पैदा करेंगे और तीसरी माँग यह कर रहे हैं कि एक गंभीर विचारकों का मार्गदर्शक मंडल बनना चाहिए जो समाज का मार्गदर्शन करें और राजनेताओं के लिए एक प्रेशर ग्रुप की तरह मजबूत हो। इन तीन दिशाओं में माँ संस्थान सक्रिय हुआ है। वैचारिक धरातल पर हमारा कार्य अलग से चलता रहेगा। मौसम सॉन्ग के ग्रुप का कार्य 2 वर्षों से चर्चा कार्यक्रम के माध्यम से चल रहा है। माँ संस्थान परिवार सशक्तिकरण के नाम से पिछले कुछ वर्षो से ज्ञान यज्ञ परिवार के नाम से सक्रिय है और माँ संस्थान तंत्र मुक्त संविधान के विषय में पिछले 5 महीने से सक्रिय हो गया है। धीरे-धीरे ज्ञान केंद्रों की स्थापना देशभर में शुरू हो गई है। मैंने आपको बहुत कम शब्दों में माँ संस्थान के 70 वर्षों के इतिहास की कुछ जानकारी दी है।

ज्ञान तत्व के पिछले अंक में हम लोगों ने सारी समस्याओं की जड़ के रूप में भारतीय संविधान को माना था। इस अंक में हमने यह बताने की कोशिश की है कि एक संविधान सभा का प्रारूप कैसा होगा। कई लोग यह प्रश्न करते हैं कि संविधान सभा में कितने लोग होंगे, उनका चुनाव कैसे होगा तथा तंत्र के तीनों अंगों को कैसे बचाया जाएगा, साथ ही उनका खर्च कैसे चलेगा। मैं आपको यह स्पष्ट कर दूँ कि यह सारा स्पष्टीकरण बाद का विषय है, प्रारंभिक चर्चा का नहीं। संविधान सभा का नाम क्या होगा, उसका नाम लोक संसद होगा या जन संसद अथवा कोई और, इस संविधान सभा में कितने लोग होंगे, इस प्रकार की कार्यप्रणाली के विषय में वे सब लोग बैठकर तय करेंगे जो ऐसे बदलाव के पक्षधर हैं और जिनके दिमाग में इस संबंध में अलग प्रस्ताव भी हैं। लेकिन इन व्यावहारिक प्रश्नों पर हम उन लोगों से कोई चर्चा नहीं करना चाहते जो केवल प्रश्न ही करना जानते हैं और जिनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। हमें यह पता है कि ऐसे प्रश्नकर्ताओं की नीयत खराब होती है क्योंकि वे इस प्रकार के किसी बदलाव के पक्षधर नहीं होते बल्कि ऐसी चर्चाओं को विवादास्पद बनाना चाहते हैं। इसीलिए मैं प्रश्नकर्ताओं से यह निवेदन करूँगा कि वे प्रश्न के साथ कुछ सुझाव या विकल्प भी देने की कृपा करें।

श्री कैलाश आदमी पत्रकार और संपादक निर्दलीय समाचार पत्र भोपाल

विचार - मूलतः स्वामी दयानंद के आर्य समाज आंदोलन से प्रभावित छ.ग. निवासी श्री बजरंगलाल अग्रवाल, जिन्होंने सामाजिक जनजागृति के खातिर तत्कालीन जनता पार्टी से इस्तीफा देकर सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं पर 14 वर्षों तक एकांत में गहन चिंतन करने के बाद अपने गृह स्थान रामानुजगंज लौटकर ज्ञान यज्ञ मंडल की स्थापना की और वर्ष 1994 में राष्ट्रीय विचारक सम्मेलन आयोजित किया। तब उसमें मुझे भी सर्वोदय विचारक के नाते आमंत्रित किया गया था। इस सम्मेलन में सर्वोदय के राष्ट्रीय नेता श्री ठाकुरदास बंग, स्वामी गंगानंद, रामकिशोर सिंह, कैलाश साहू, डॉ. रामचंद्र दुबे, ओमप्रकाश भाटिया, बी. आर. धर्मेंद्र, डॉ. प्रसाद निष्काम, स्वामी गिरधर योगेश्वर, डॉ. गुरुशरण, प्रेमभाई, अर्पित अनाम, अनमोल सोनी, मदनमोहन व्यास, रुद्रभान, दुर्गा प्रसाद आर्य, प्रकाश सचेत, उदयप्रताप सिंह, व मुरारीलाल अग्रवाल आदि प्रमुख विद्वान सम्मिलित हुए। उक्त सम्मेलन के संयोजक श्री बजरंगलाल, जो बाद में बजरंग मुनि हो गए, के प्रमुख सलाहकारों में सर्वोदय विचारक श्री आर. एन. सिंह थे। उस समय मैंने सम्मेलन में पत्रकार की भूमिका निभाते हुए 1986 में गठित ज्ञान यज्ञ मंडल और 1991 में गठित स्थानीय नागरिक महासंघ के क्रियाकलापों का अध्ययन करते हुए एक रपट भी तैयार की थी, जो साप्ताहिक निर्दलीय के सोलह अक्टूबर 1994 अंक में प्रकाशित हुई। इस रपट के माध्यम से मैंने पाठकों को यह जानकारी देने का प्रयास किया था कि ज्ञान यज्ञ मंडल और नागरिक महासंघ के सदस्य मिलकर रामानुजगंज एवं आसपास के गाँवों में किस प्रकार अपराध नियंत्रण एवं सामाजिक जागृति का प्रयास कर रहे हैं। उस समय इन संस्थाओं का प्रभाव रामानुजगंज एवं आसपास के 13 गाँवों में से 6 गाँव में दिखाई दिया। यह भी प्रगट हुआ कि सभी गाँवों के निवासी शासन की उपेक्षा के कारण शोषण व भ्रष्टाचार से परेशान हैं। गाँवों में विकसित नए नेतृत्व की परिपक्वता और ग्रामीणों की एकजुटता का अभाव खल रहा है। बेरोजगारी, श्रमिक शक्ति की उपेक्षा एवं श्रम मूल्य का सही आकलन न होने के साथ ही सभी गाँवों में सड़क, बिजली, स्वास्थ्य, पेयजल और अशिक्षा का संकट विद्यमान है तथा ग्रामीण मद्यपान एवं उसके दुष्परिणामों के शिकार हैं। उस समय अधिकांश गाँवों तक श्री बजरंगलाल की ख्याति नहीं पहुँची थी, लेकिन कालांतर में उन्होंने ग्रामीण विकास और रामानुजगंज के विकास हेतु जो काम किए, उससे निःसंदेह उनकी कीर्ति न केवल छ.ग. बल्कि पूरे म.प्र. तक फैल गई और विचारक सम्मेलन के बाद उनकी पहचान अन्य राज्यों में भी बनने लगी। रामानुजगंज के लोगों ने बजरंगलाल जी को नगर पंचायत का अध्यक्ष चुना ताकि वे क्षेत्र को लोकस्वराज्य की दिशा में प्रवृत्त कर सकें। उन्हें नागरिकों ने व्यवस्था परिवर्तन अभियान को सफल बनाने हेतु भ्रष्टाचार पर नियंत्रण का अधिकार दिया। श्री बजरंगलाल ने यह नियम बनाया कि रामानुजगंज का कोई भी अधिकारी व कर्मचारी दस प्रतिशत से अधिक रिश्वत नहीं लेगा। उनके इस नियम की तीखी आलोचना हुई, लेकिन श्री बजरंगलाल का कहना था कि प्रदेश में 24 प्रतिशत रिश्वत खुलेआम ली जाती है, अतएव उन्होंने दस प्रतिशत रिश्वत लेने की छूट देकर कोई गलत काम नहीं किया है। बजरंगलाल ने सर्वोदय विचार से प्रभावित होकर समाज में व्यवस्था परिवर्तन के अनेक प्रयास किए, किंतु उनके कुछ विचारों से मेरी असहमति रही। इसके बावजूद श्री बजरंगलाल जी मेरी गणना अपने शुभचिंतकों में करते रहे और आज भी करते हैं। यह उनकी सहिष्णुता का एक बड़ा प्रमाण है, किंतु उनमें एक सबसे बड़ी कमी यह भी है कि वे अपनी ज्यादा आलोचना सहन नहीं कर पाते। इसी कारण श्री रोशनलाल अग्रवाल, श्री भरत गांधी व आचार्य अखिलेश आयनेंदु जैसे कई अर्थशास्त्री एवं समाज चिंतक उनसे दूर होते चले गए। जहाँ तक श्री बजरंगलाल के विचारों से मेरी असहमति का सवाल है, मेरा यह दृढ़ मत रहा कि भ्रष्टाचार के मामले में श्री बजरंगलाल को समझौता नहीं करना चाहिए। इसके साथ ही श्री बजरंगलाल फाँसी की सजा को अमानवीय मानने के लिए तैयार नहीं होते, वे यह भी कहते हैं कि देश में महँगाई नहीं है और महिलाओं पर भी अत्याचार नहीं होते। मेरा इन्हीं मुद्दों पर उनसे मतभेद रहा और आज तक बना हुआ है। इसके बावजूद मैं वर्ष 2006 में उनके आमंत्रण पर नई दिल्ली गया तथा गांधीवादी विचारक श्री आर्यभूषण भारद्वाज के साथ मिलकर श्री बजरंगलाल द्वारा शुरू किए गए अभियान में लंबे समय तक हाथ बँटाया। इस कार्य हेतु मैंने देशाटन किया और समग्र व्यवस्था परिवर्तन का विचार पूरे देश में फैलाने का विनम्र प्रयास किया। इस अवधि में दिल्ली के राजेंद्र नगर में राष्ट्रीय सम्मेलन भी आहूत किया गया, जिसे सफल बनाने हेतु मैंने श्री पुष्पेंद्र सिंह चौहान, श्री वेदप्रकाश शर्मा, अनीस भाई, श्री वेदप्रताप वैदिक व श्री प्रभाष जोशी आदि विद्वानों का भी भरपूर सहयोग प्राप्त किया। जब श्री बजरंगलाल ने व्यवस्था परिवर्तन अभियान से श्री गोविंदाचार्य को जोड़ा, तब मेरी असहमति रही। मेरा कहना था कि श्री गोविंदाचार्य इस अभियान में लंबे समय तक साथ चलने वाले नहीं हैं। श्री बजरंगलाल जी नहीं माने, तो भी मैं उनके साथ श्री गोविंदाचार्य से निरंतर संपर्क में रहा, किंतु अंततोगत्वा वही हुआ और श्री गोविंदाचार्य अभियान को बीच में ही छोड़ गए। विगत 5 वर्ष पूर्व नोएडा में व्यवस्था परिवर्तन सम्मेलन में मैंने हिस्सेदारी की थी, उसके बाद हाल ही कौशांबी और वसुंधरा में हुए सम्मेलन में मैंने हिस्सेदारी की। इस अंतराल के लिए मुझे गांधीवादी कार्यकर्ता श्री ओमप्रकाश दुबे ने टोका भी, लेकिन मैंने यह कहकर उन्हें शांत किया कि दैनिक निर्दलीय के प्रकाशन के कारण मुझे अब उतना समय नहीं मिल पाता, जितना पहले दे पाता था। फिर भी दुबे जी और श्री बजरंग मुनि के आग्रह पर मैंने अभियान की मासिक बैठकों में सम्मिलित होने की स्वीकृति दे दी, क्योंकि मुझे लगता है कि श्री मुनि ने जिस काम का बीड़ा उठाया है, वह सही है। कुछ मुद्दों पर असहमति के चलते मुझे लगता है कि संविधान संशोधन के काम में मुझे हाथ बँटाना ही चाहिए, क्योंकि संविधान में आमूलचूल परिवर्तन समय की आवश्यकता और माँग है।

उत्तर:- यह सच है कि कैलाश आदमी जी पिछले 30 वर्षों से अब तक निरंतर हमारे पूरे विचार-विमर्श में सम्मिलित रहे। साथ ही यह भी सच है कि जो बात उन्हें उचित नहीं लगी, उसका उन्होंने खुलकर विरोध किया। यहाँ तक कि कई बार उग्र विवाद भी होता रहा है। इतना होने के बाद भी वे और मैं हमेशा विचार-मंथन में एक साथ बैठते रहे। कई बार मैं भोपाल उनके कार्यक्रम

में भी जाता रहा हूँ। कह नहीं सकता कि अपने विचारों में मैं कितना सही हूँ और कैलाश जी कितने सही हैं, किंतु एक बात में हम दोनों एकमत हैं कि हम दोनों की नीयत साफ है और दोनों ही गांधी को एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व मानते हैं। यह सच है कि मैंने नगरपालिका अध्यक्ष रहते हुए किसी भी प्रकार के नगरपालिका के कार्य में 10 प्रतिशत घूस लेकर उसे नागरिकों के फंड में जमा कराना शुरू किया था। यह राशि पूरे शहर द्वारा बनाई नई व्यवस्था के अतर्गत ही जमा होती थी और वही से खर्च होती थी। सारा हिसाब पारदर्शी था। मेरी इस व्यवस्था का सर्वोदय के एक समूह ने विरोध किया था, जिसमें कैलाश जी भी शामिल थे, किंतु वह व्यवस्था पूरे 5 वर्ष चलती रही। क्योंकि मेरा यह मानना था कि नगर की जनता मालिक है और सरकार प्रबंधक। यदि सरकार ने किसी दबाव में अपने नियम-कानून थोप दिए हैं, तो हम उस गुलामी से बच भी सकते हैं। मेरा लोटा अगर कोई लुटेरा सेना और पुलिस के बल पर लूटकर ले जाए और मैं अपना लोटा चुराकर लुटेरे के घर से ले आऊँ, तो गांधीवादी मुझे चोर समझेंगे और मैं अपने को समझदार समझूँगा। यदि मैं चोरी में पकड़ा जाऊँगा, तो मैं दंड भुगतूँगा, किंतु मुझे समाज के सामने सिर ऊँचा करके चलने से कोई नहीं रोक सकता। यही कारण है कि मैंने 5 वर्ष तक खुलेआम प्रस्ताव पारित करके घूस का प्रावधान चलाया और सरकार कुछ नहीं कर सकी। साथ ही आज इन सबके बाद भी समाज में मेरी प्रतिष्ठा कई गुना अधिक बढ़ी है।

मैं यह कहना चाहता हूँ कि कैलाश आदमी जी ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने मेरी सोच को रगड़-रगड़ कर धार दी है। हम लोगों का आज भी कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं होता, जिसमें कैलाश आदमी जी को न बुलाया जाए और वे मेरी बात को न काटें। मुझे विश्वास है कि आदमी जी के साथ रहते मैं कोई गंभीर गलती नहीं कर पाऊँगा, जो हमारे अभियान के लिए बहुत उपयोगी होगा।

संविधान सभा की आवश्यकता

“...भारत में तंत्र से जुड़े दो अंग, न्यायपालिका और विधायिका, आपस में इतना नीचे उतरकर अधिकारों की छीना-झपटी में लगे हैं, जैसे दो लुटेरे लूट का माल बँटवारा करने में झगड़ा करते हैं।...”

1. लोकतंत्र का अर्थ लोक नियंत्रित तंत्र होता है। तंत्र लोक का प्रबंधक होता है, प्रतिनिधि नहीं। लोक और तंत्र के बीच एक संविधान होता है, जो लोक का प्रतिनिधित्व करता है तथा लोक की ओर से तंत्र की सीमाएँ निर्धारित करता है। लोकतंत्र में संविधान का शासन होता है और संसद सहित तीनों अंग संविधान के नियंत्रण में कार्य करते हैं। संविधान के नीचे संसद, संसद के नीचे कानून, कानून के अंतर्गत नागरिक होता है। कोई भी नागरिक, चाहे कितने भी बड़े पद पर हो, किंतु कानून से ऊपर नहीं हो सकता। तंत्र ही कानून बनाता है और उसका पालन भी कराता है। किंतु यदि कानून बनाने वाला और पालन कराने वाला तंत्र ही संविधान भी संशोधित-परिवर्तित करने लगे, तो कानून और संविधान की अलग-अलग स्थिति ढोंग बन जाती है, जैसा भारत में हो रहा है। तंत्र के पास जो शक्ति अर्थात ताकत होती है, वह लोक की अमानत होती है, तंत्र का अधिकार नहीं। दुर्भाग्य से भारत में तंत्र से जुड़ी तीनों इकाइयाँ संविधान से प्राप्त इस शक्ति को लोक की अमानत न समझकर अपना अधिकार समझने लगती हैं।

मैंने कई जगह देखा है कि कुछ लोग अपने व्यावसायिक या अन्य कुत्सित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धर्म का सहारा लेते हैं। ये एक मंदिर बनाते हैं, उस मंदिर में किसी भगवान या साईं बाबा की मूर्ति स्थापित करते हैं, और स्वयं उसके पुजारी बन जाते हैं। यह मंदिर और भगवान उस पुजारी के सारे गलत कार्यों में अप्रत्यक्ष सहायक होता है। मेरा एक मित्र साधु बनकर, मंदिर बनाकर, भगवान को स्थापित करके राजनेताओं को महिलाएँ सप्लाई करने का धंधा करता था। मैंने उससे किनारा किया। यह कोई एक घटना नहीं हो सकती। ठीक इसी तरह राजनीति भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मंदिर और भगवान बनाकर स्वयं पुजारी के रूप में उसका संचालन बन जाती है। आप विचार कीजिए कि भारत में राजनीति के नाम पर ऐसा कौन -सा

अपराध बचा है, जो नहीं किया जा रहा। यहाँ तक कि नरेंद्र मोदी जी भी संसद में जाने के पहले उसकी सीढ़ियों को प्रणाम करने का नाटक करके लोक के समक्ष यह प्रमाणित करते हैं कि संसद एक मंदिर है और संविधान भगवान। वहाँ जाने वाला हर नेता संविधान की शपथ लेता है और जब मर्जी उस संविधान में फेरबदल भी कर देता है। मैं नहीं समझता कि इतना ढोंग करने का उद्देश्य क्या है। कुछ बातें स्वयं सिद्ध दिख रही हैं। 1. किसी भी संविधान का मुख्य उद्देश्य स्वतः कानून का पालन कर रहे नागरिकों को भयमुक्त तथा कानून का उल्लंघन करने वालों को पालन करने के लिए मजबूर करना होता है। भारत में संविधान के सक्रिय हुए लगभग सत्तर वर्ष हो गए और इतनी अवधि में कानून का पालन करने वाले कानून से भयभीत हैं और उल्लंघन करने वाले लगभग भयमुक्त।

2. संविधान का कार्य तंत्र से जुड़े तीनों अंगों के बीच समन्वय स्थापित करना होता है। भारत में तंत्र से जुड़े दो अंग, न्यायपालिका और विधायिका, आपस में इतना नीचे उतरकर अधिकारों की छीना-झपटी में लगे हैं, जैसे दो लुटेरे लूट का माल बँटवारा करने में झगड़ा करते हैं। स्पष्ट है कि लोक अर्थात समाज को वोट देने के अतिरिक्त सभी मामलों में अधिकारविहीन करने का यह परिणाम है। आज हर प्रकार के अपराधियों का राजनीति की तरफ अधिक से अधिक बढ़ता आकर्षण इस बात का स्पष्ट संकेत है कि कहीं न कहीं लोक और तंत्र के बीच मालिक और गुलाम की स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। लोकतंत्र, लोक नियंत्रित तंत्र की जगह तंत्र नियंत्रित लोक के समान बन गया है। स्थिति यहाँ तक खराब हो गई है कि अब तो जनहित की परिभाषा भी तंत्र ही करने लगा है। हमारे क्या अधिकार हों, यह तंत्र ही तय करेगा और तंत्र के क्या अधिकार हों, वह स्वयं तय कर लेगा। हमारा वेतन कितना हो, इसका अंतिम निर्णय तंत्र करेगा और तंत्र से जुड़े लोगों का वेतन तंत्र स्वयं तय कर लेगा। उसमें कोई लोक से पूछने की आवश्यकता नहीं। हरियाणा में जनहित में शराब बंद हुई और कुछ वर्ष बाद जनहित में ही शराब चालू हो गई। क्योंकि जनहित की परिभाषा करने का अंतिम अधिकार शराब बंद और चालू करने वाले के पास ही था। उसने जब चाहा, तब जनहित की मनमानी परिभाषा बना दी और यदि कहीं संविधान उसमें बाधक बना, तो जनहित में संविधान की ही व्याख्या बदल दी। इस प्रकार भारत का संविधान संसद का गुलाम है। गुलाम संविधान को माध्यम बनाकर भारत का तंत्र सत्तर वर्षों से समाज को गुलाम बनाकर रखे हुए है। समस्या क्या है, यह बताने वाले तो आपको गली-गली मिल जाएँगे, किंतु हमारा उद्देश्य सिर्फ समस्याओं का रोना नहीं है, बल्कि समाधान की चर्चा करना है। अनेक गुलाम यह कहते हुए भी दिख जाते हैं कि यदि हम सुधर जाएँगे, तो सब कुछ सुधर जाएगा। मैं ऐसी गुलाम मानसिकता वालों में शामिल नहीं हूँ। मैं तो समस्या के समाधान और उस समाधान में अपनी प्रत्यक्ष भूमिका की चर्चा करना चाहता हूँ।

संविधान में व्यापक संशोधन की आवश्यकता है, यह मैं भी समझता हूँ। किंतु यदि हमने अपनी सुरक्षा के लिए किसी पहरेदार को बंदूक देकर सुरक्षा कर्मी नियुक्त किया और वह पहरेदार ही उस बंदूक से मुझे समाप्त करके सब कुछ ले लेने की नीयत कर ले, तो यह तय करना बहुत कठिन है कि प्रारंभ कहाँ से किया जाए और उसका तरीका क्या हो? स्पष्ट है कि वह बंदूक उसके हाथ से लेना सबसे पहली प्राथमिकता है। आज हमारा संविधान संसद के कब्जे में है और उस संविधान को संसद से मुक्त कराने के बाद ही हम कुछ अन्य व्यापक संशोधनों की बात सोच सकते हैं। इसलिए हमारी सबसे पहली प्राथमिकता यह है कि संविधान संशोधन के संसद के असीम अधिकारों की स्थिति में कुछ फेरबदल हो। इस संबंध में कई प्रस्ताव हैं, जिनमें एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह है कि एक लोक संसद भी बने और यह लोक संसद वर्तमान संसद के समकक्ष हो। इसका चुनाव और चुनाव प्रणाली संसद के ही समान हो और साथ-साथ हो। किंतु लोक संसद और वर्तमान संसद के अधिकार और दायित्व बिल्कुल अलग-अलग हों। अर्थात लोक संसद, वर्तमान संसद के संविधान संशोधन के एकमात्र अधिकार को छोड़कर किसी भी कार्य में कोई भूमिका अदा नहीं कर सकेगी। यदि कोई संविधान संशोधन का प्रस्ताव लोक संसद अथवा वर्तमान संसद के समक्ष आता है, तो लोक संसद और वर्तमान संसद अलग-अलग बैठकर सहमति के द्वारा ही संविधान संशोधन कर सकते हैं। यदि दोनों के बीच किसी विषय पर पूरी सहमति नहीं बनी और अंत तक टकराव कायम रहा, तो उक्त संविधान संशोधन के लिए जनमत संग्रह अनिवार्य होगा। लोक संसद का कार्य सिर्फ संविधान संशोधन तक होगा। इसलिए उसकी सक्रियता बहुत कम होगी। इससे जुड़े लोगों का कोई वेतन नहीं होगा, कोई अलग से ऑफिस भी नहीं होगा। लोक संसद का चुनाव निर्दलीय होगा। यदि आवश्यक समझा जाए, तो लोक संसद को चार कार्य और भी दिए जा सकते हैं। 1. राइट टू रिकॉल का प्रावधान बनाना। 2. लोकपाल की नियुक्ति और नियंत्रण। 3. संसद सदस्यों के वेतन-भत्ते का निर्धारण। 4. किन्हीं दो संवैधानिक इकाइयों के बीच टकराव की स्थिति में निपटारा करना। इसके अतिरिक्त लोक संसद की कोई भूमिका नहीं होगी।

प्रश्न उठता है कि यह कार्य होगा कैसे। संविधान संशोधन के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं है। संविधान संशोधन के अब तक दुनिया में चार मार्ग दिखते हैं। 1. जय प्रकाश जी का, अर्थात संसद में जाकर संविधान संशोधन। 2. अन्ना हजारे का मार्ग, जिसमें प्रबल जनमत खड़ा करके संविधान संशोधन करने हेतु संसद को सहमत करना। 3. ट्यूनीशिया और मिश्र का मार्ग। 4. लीबिया का मार्ग। अंतिम दो मार्ग भारत में अनावश्यक और अनुपयुक्त हैं। प्रथम दो मार्गों का प्रयोग किया जा सकता है। इन दोनों पर निरंतर सक्रियता बनी हुई है। राजनीति में जाकर संविधान संशोधन के प्रयास में कुछ संगठन निरंतर सक्रिय हैं। हरियाणा में रणवीर शर्मा भी लगातार इस कार्य में लगे हुए हैं। दूसरी ओर, व्यवस्था परिवर्तन अभियान कमेटी अन्ना मार्ग से चलकर लगातार जनमत जागरण का प्रयास कर रही है।

मैं एक विचारक हूँ। उम्र और स्वास्थ्य के हिसाब से आवागमन या सक्रियता कठिन है। फिर भी मैं एक विचारक के रूप में इन प्रयासों का सहयोग और समर्थन करता हूँ। साथ ही मैं एक आस्थावान हिंदू होने के आधार पर ईश्वर से भी निवेदन करता हूँ कि समाज व्यवस्था को गंदी राजनीति की गुलामी से मुक्त होने में सहायता करे।

पत्रोत्तर

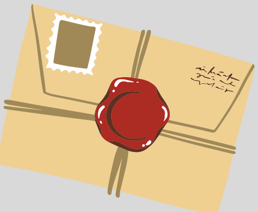

{1} डॉ. गोपीरंजन साक्षी, तिलक रोड, सागर, मध्य प्रदेश।

आप जिस महत कार्य में जुटे हुए हैं, उसकी जानकारी एक अभिन्न मित्र प्रभु-सत्यशीलम् प्रेस, सागर से ज्ञानतत्व के रूप में उपलब्ध हुई। आपने लिखा है -'भारतीय संविधान लोकतांत्रिक विश्व के संविधानों में सबसे रद्दी संविधान है।' तब तो निश्चित ही आपको डॉ. राजेंद्र प्रसाद का अध्यक्ष, संविधान सभा के रूप में कहा गया वह कथन याद ही होगा कि यद्यपि संविधान प्रारूप समिति में सात सदस्य थे, लेकिन मैंने अपनी आँख से देखा है कि संविधान निर्माण का कार्य अकेले डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने संपादित किया और हम लोग डॉ. अंबेडकर को संविधान प्रारूप समिति का अध्यक्ष नियुक्त करने के अतिरिक्त कोई दूसरा अच्छा काम नहीं कर सके। अब यह स्वाभाविक है कि अब कहाँ एक व्यक्ति का कृतित्व और कहाँ 1500 विशेषज्ञों का कृतित्व और तब की संसद को तो भारत में इतना सूझबूझ वाला व्यक्ति दिख ही नहीं रहा था। पंडित नेहरू की सरकार तो विदेश से संविधान विशेषज्ञ लाना चाहती थी। वह तो कहो महात्मा गांधी के प्रबल समर्थन से डॉ. भीमराव अंबेडकर को सर्वसम्मति से संविधान प्रारूप संरचना के लिए चुना गया।

जब आप हम डेढ़ अरब भारतवासियों के भाग्य निर्माता बनकर आगे आ रहे हैं, तो हिंदुओं की संरचनाओं की पृष्ठभूमियों का अध्ययन तो कर ही डाला होगा। तब तो आप जनों को डॉ. बी. आर. अंबेडकर के संविधान सभा में वर्तमान संविधान को समर्पण के समय कहा गया कथन भी याद होगा ही, ''संविधान के पालनकर्ताओं की नीयत ठीक है, तो बुरे संविधान से भी अच्छा कार्य कर सकेंगे और इसके विपरीत संविधान में पालनकर्ताओं की नीयत खराब है, तो अच्छे से अच्छा संविधान भी दुष्परिणाम देगा।'' अब आप तो जानते ही हैं कि स्वतंत्र भारत के संविधान के समय देश में शिक्षितों की क्या स्थिति थी। किन विद्रूपताओं में भारत घिरा था और डॉ. अंबेडकर तो अति पिछड़ी जाति के थे। आप पूर्ण ईमानदारी से बताने का कष्ट करें कि आपके इन रत्नों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, पिछड़े, अति पिछड़े, अन्य अल्पसंख्यक कितनी-कितनी संख्या में हैं, जिससे पारदर्शिता के आधार पर हम सहज जान सकेंगे कि भारत की सभी कौमों के शुभचिंतकों की भागीदारी नवनिर्मित संविधान सभा में है और उनकी विशेषज्ञता बता सकेंगे, तो और पारदर्शिता होगी। ऐसा मैं इसलिए चाह रहा हूँ कि सड़कों पर हो-हल्ला मचाने वालों में तो प्रायः असंस्कृत, दुष्टचित्तवृत्ति के लोगों का ही जमावड़ा होता है, जिसे चुस्त-चालाक लोग आवेश में लाकर आत्मदहन, दंगा-फसाद, प्रदर्शन, संविधान को बदलने की दिशा में इस्तेमाल कर लेते हैं। आप जन तो इस दिशा में निरंतर सक्रिय हैं। मीडिया तो ठीक-ठाक खबरें देता नहीं, आपकी पत्रिका ज्ञान तत्व से जानकारी पा सके। अतः मेरे पते पर नियमित अंक भेजने की कृपा करें।

आप जन से यह छिपा नहीं है कि भारत में आर्यों के आगमन पश्चात् दिन-प्रतिदिन मूलवासियों की दशा गिरती ही चली गई। अवतारों से भी दलितोद्धार नहीं हो सका। उनकी दीन दशा की जनक मनुस्मृति रही, जिसकी काली छाया से आज भारत की 65 प्रतिशत जनता आक्रांत है। संविधान पालकों ने अपनी दोगली वृत्ति से उनका हक 60 वर्षों में पूरा नहीं किया। बैकलॉग आज तक खाली पड़ा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी इसी साजिश का उपक्रम हैं। आपके उत्तर से आपकी नीयत प्रमाणित होगी। हाथी के खाने के दाँत और दिखाने के दाँत अलग-अलग होते हैं। मानवता प्रधान समतामूलक ही भारत की दीन-दशा का एकमात्र हल है।

उत्तरः- मैंने बहुत वर्षों तक सुन रखा था कि संविधान बनाने में नेहरू जी की मनमानी चली और डॉ. भीमराव अंबेडकर ऐसे संविधान के पक्ष में नहीं थे। मुझे कई बार बताया गया कि डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान लिखा था। उन्होंने कई जगह असंतोष भी व्यक्त किया और विरोध भी, किंतु उनकी बात सुनी ही नहीं गई और उन्हें संविधान में वह सब शामिल करना पड़ा, जो उचित नहीं था। संविधान लागू होने के बाद भी अंबेडकर जी ने अपना असंतोष व्यक्त किया था। स्वभाव और सोच के अनुसार भी अंबेडकर जी गांधी जी के ग्राम स्वराज्य प्रणाली के अधिक पक्षधर थे। मैं मानता रहा कि यदि अंबेडकर जी की इच्छानुसार सब कुछ बना होता, तो संविधान में ग्राम स्वराज्य का गला घोंटकर उसे नीति निर्देशक सिद्धांतों की जूठन में शामिल नहीं किया जाता। बाद में मुझे पता चला कि भारत का यह रद्दी संविधान अकेले डॉ. भीमराव अंबेडकर का बनाया हुआ है, जिसमें नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, पटेल आदि की कोई भूमिका नहीं होने से वे इसके लिए दोषी नहीं हैं।

संविधान मंथन सभा जिन विद्वानों के नाम चयन कर रही है, उसमें कितने लोग किस जाति के हैं, यह न तो मुझे पता है, न ही पता करना संभव है, न ही आवश्यकता है, क्योंकि संविधान पर विचार-मंथन के लिए जिस योग्यता की आवश्यकता है, उसमें जाति न कहीं बाधक है, न साधक। फिर साक्षी शब्द को किस जाति वर्ग में जाना जाए, यह बहुत कठिन कार्य है। इसलिए मैं इस अनावश्यक कसरत से दूर हूँ। एक बात मैं जरूर देख रहा हूँ कि इस टीम में ग्रामीण, गरीब, श्रमजीवी, उत्पादक वर्ग के लोगों का अभाव रहेगा, क्योंकि इस वर्ग के लोग न तो समय दे सकते हैं, न ही आने-जाने का मार्ग व्यय खर्च करने की क्षमता रखते हैं। यह हमारी मजबूरी है कि इस टीम में अधिकांश लोग शहरी, बुद्धिप्रधान, संपन्न, उपभोक्ता ही रहेंगे। फिर भी दूसरे वर्ग के कुछ लोग रहे, तो हमें खुशी ही होगी। अब तक जो चार सौ नाम तय हुए हैं, उनके नाम ज्ञानतत्व में प्रकाशित हो चुके हैं और नाम तय होंगे, तो जाएँगे। आप भी मदद करें, तो अच्छा है।

आपने डॉ. अंबेडकर के नाम से कोई वाक्य इतने बड़े विद्वान का हो ही नहीं सकता। यदि व्यवस्था पर संविधान का नियंत्रण नहीं हो सकता और पालन करने वाले संविधान के रहते हुए भी उससे हटकर व्यवस्था चला सकते हैं, तो फिर संविधान की जरूरत ही क्या? क्यों नहीं सारी शक्ति पालन करने वालों की नीयत ठीक करने में ही लगा दी जाए। यदि संविधान सर्वोच्च भी है और महत्वपूर्ण भी, तो संविधान के दुष्परिणाम का दोष पालन करने वालों की नीयत पर डालना ठीक नहीं। क्या हम ऐसे संविधान की प्रशंसा करते रहें, जो बुरी नीयत वालों की सहायता करने लगता है? मुझे उत्तर चाहिए कि संविधान की भूमिका निष्क्रिय है या नियंत्रक, सिर्फ गोबर-गणेश की भूमिका तक सीमित है, तो मैं संविधान संशोधन का पक्षधर हूँ। आप मेरी नीयत की परख कर रहे हैं। मुझे खुशी हुई कि कम से कम कोई तो ऐसा है, जो नीतियों पर चर्चा से हटकर नीयत पर चर्चा कर रहा है। मुझे पूरा विश्वास है कि आप मेरी नीयत पर विश्वास करते हुए नीतियों पर भी विचार-मंथन को आगे बढ़ाने की कृपा करें।

पत्रोत्तर

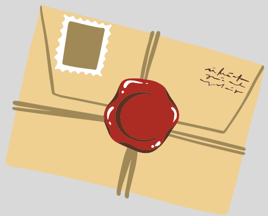

प्रश्न 2 :पूरे भारत में यह प्रश्न लंबे समय से अनुत्तरित है कि हमारे इतने बड़े-बड़े विद्वान बैठकर संविधान बना रहे थे और उन लोगों ने बैठकर ऐसा अनुपयुक्त संविधान कैसे बना दिया। क्या उनकी नीयत खराब थी अथवा उन लोगों ने कुछ भूल की है। क्योंकि इतने स्वतंत्रता संघर्ष में लगे हुए लोगों ने कई वर्ष परिश्रम करके भारत का संविधान तैयार किया।

उत्तर- इस विषय पर मैंने बहुत सोचा और मैंने यह पाया कि भारत का संविधान तैयार करने में समाज विज्ञानियों, समाजशास्त्रियों या समाज के समझने वाले लोगों की कोई मदद नहीं ली गई। सच बात यह है कि स्वतंत्रता संघर्ष में भी नेतृत्व करने में अधिकांश लोग वकील थे और स्वतंत्रता संघर्ष को आगे बढ़ाने में भी मीडियाकर्मियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। समाचार पत्रों की भूमिका उस कालखंड में बहुत ज्यादा थी। यही कारण है कि संविधान बनाने वाली कमेटी में वकीलों और मीडिया के लोगों का वर्चस्व रहा। संविधान बनाने में समाज विज्ञानियों या सामाजिक विचारों की भूमिका बहुत कम रही है। यदि थे भी, तो उनकी बात सुनी ही नहीं गई। क्योंकि सारी जानकारी की ठेकेदारी तो वकीलों और मीडिया के लोगों ने ले ली थी। गांधी एक बहुत बड़े सामाजिक ज्ञाता थे, लेकिन संविधान निर्माण में उनकी किसी प्रकार की कोई भूमिका नहीं रही। यही कारण है कि आज जो संविधान बना है, यह संविधान वकीलों और पत्रकारों के लिए स्वर्ग बन गया है। अब संविधान लागू होने से आज तक आप यह अनुभव करेंगे कि वकीलों और पत्रकारों को सब प्रकार की उचित-अनुचित सुविधा प्राप्त हैं, क्योंकि इन लोगों ने मनमाना संविधान बनाकर अपनी अधिक से अधिक रोजी-रोटी का जुगाड़ कर लिया। इन लोगों ने आँख बंद करके पश्चिम की नकल की। यदि गहराई से विचार किया जाए, तो भारत में ब्लैकमेलिंग करने में मीडियाकर्मी सबसे अधिक आगे हैं और कानूनी टकराव का दुरुपयोग करने में भी वकीलों की सबसे अधिक भूमिका होती है, क्योंकि दोनों की संविधान निर्माण में बहुत बड़ी भूमिका रही है। अब आवश्यकता इस वर्ष की है कि समाज विज्ञान के जानकार बैठकर इस समस्या का समाधान खोजें। हमें ऐसा संविधान नहीं चाहिए, जिस संविधान के माध्यम से हमारा सदियों तक शोषण होता रहे। हम संवैधानिक तरीके से ब्लैकमेलिंग के शिकार न हो सकें। संविधान निर्माण में विचारकों की भूमिका सबसे अधिक होनी चाहिए। व्यावसायिक हित चिंतकों को इससे दूर रखा जाए।

प्रश्न- राजनेताओं द्वारा आमतौर पर कहा जाता है कि भारतीय संविधान एक समुद्र के समान है, जिसमें अनेक तरह के हीरे-मोती मौजूद हैं। यदि हम लोग उन्हें न निकाल सके, तो यह हमारी गलती है, समुद्र की या समुद्र बनाने वाले की नहीं।

उत्तर- मैं मान लेता हूँ कि भारतीय संविधान एक समुद्र के समान है, जिसमें अनेक तरह के रत्न मौजूद हैं, लेकिन मैं यह बात जानना चाहता हूँ कि अभी तक उन हीरे-मोतियों का क्या उपयोग हो पाया? जो हीरे-मोती 140 करोड़ व्यक्तियों के लिए भोजन की व्यवस्था नहीं कर सकते, वह हीरे-मोती तो हमारे लिए कंकड़-पत्थर के समान अनुपयोगी हैं। यह समुद्र तो ऐसा है, जो हमारी नदियों का सारा मीठा पानी लेकर उसे खारा बना देता है। अब न हम उस पानी का कोई उपयोग कर सकते हैं, न उससे खेती कर सकते हैं। यहाँ तक कि यदि हम उस पानी से स्नान कर लें, तब भी उस खारे पानी के दुष्प्रभाव को अन्य मीठे पानी से साफ करना पड़ता है। इसलिए हमें समुद्र रूपी संविधान नहीं, बल्कि हमें मीठे पानी की झील सरीखा संविधान चाहिए।

हिन्दू-मुस्लिम संबंध

1: आजकल तीन-चार दिनों से पंडित जी ढाबा पर किसी मुसलमान को पीटने और पैंट खुलवाने की घटना की चर्चा हो रही है। मैंने उस घटना की सच्चाई जानने की कोशिश की। सच बात यह है कि मुजफ्फरनगर के पास एक पंडित जी शुद्ध वैष्णव ढाबा के नाम से होटल चलता है, वह काफी प्रचलित है। इस होटल में यह विवाद हुआ है। उसकी कहानी इस प्रकार है कि मेरठ की रहने वाली किसी ब्राह्मण महिला ने होटल बनवाया, लेकिन उस होटल को स्वयं न चलाकर उसने वह होटल एक मुसलमान को किराए पर दे दिया। वह मुसलमान उस होटल को चलाने के लिए एक शर्मा जी नामक ब्राह्मण को मैनेजर नियुक्त किया। वहाँ कुछ कर्मचारी रखे गए, उनमें कुछ मुसलमान भी थे, उनका नाम हिंदू कर दिया गया। इस होटल का मालिक मुसलमान है, यह बात किसी तरह वहाँ के लोगों को पता चली। होटल मालिक सनौर को यह बात बुरी लगी और उसे यह संदेह हुआ कि उनके ब्राह्मण मैनेजर ने ही यह सच बताया होगा। उस मुसलमान होटल मालिक ने जाकर अपने मैनेजर को पीटा। मैनेजर ने थाने में रिपोर्ट की। उस समय कुछ पुलिस वालों के साथ आंदोलनकारी हिंदू उस होटल में पहुँचे। इन लोगों ने मिलकर कर्मचारियों से आधार कार्ड माँगने शुरू किए। उस आधार जाँच में गोपाल नामक व्यक्ति ने आधार कार्ड न होने की बात बताई। इस पर उन लोगों को संदेह हुआ। हो सकता है कि ऐसे वातावरण में उन आंदोलनकारियों ने गोपाल से पैंट उतारकर प्रमाण दिखाने की बात की हो। बहुत दबाव पड़ने पर गोपाल ने अपना आधार कार्ड दिखाया, जो तजमुल के नाम से था। हो सकता है कि इसके बाद कुछ लोगों ने तजमुल को हल्का-फुल्का पीटा भी हो, लेकिन तजमुल ने पुलिस में पैंट खोलने का दबाव डालने और पीटने की रिपोर्ट की, जिसमें चार लोगों को पुलिस ने पकड़ा भी। दूसरी ओर, होटल के मैनेजर शर्मा जी की रिपोर्ट पर होटल मालिक मियाँ जी तथा अन्य लोगों पर जुर्म कायम किया गया। कुल मिलाकर घटना इस तरह की है। इसी घटना को मुस्लिम गुट के लोग, अखिलेश यादव, दिग्विजय सिंह तथा कुछ अन्य कथित लोग बहुत बड़ा चढ़ाकर बताने की कोशिश कर रहे हैं। इस बात पर गंभीरता से विचार होना चाहिए कि इस घटना में पीटने वालों की गलती कितनी है और धोखा देने वालों की गलती कितनी है। इस बात पर भी सोचा जाना चाहिए कि वर्तमान भारत में मुसलमान के सामने ऐसी कौन-सी मजबूरी आ गई है कि उन्हें अपना नाम छिपाना पड़ रहा है।

2 : यह प्रश्न आज भी विचारणीय है कि स्वतंत्रता के पूर्व हिंदुओं और मुसलमानों के बीच आपसी संबंध खराब नहीं थे। आमतौर पर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच अविश्वास भी नहीं था। सबसे पहले हिंदुओं को झटका लगा, जब मुसलमान के बहुमत ने पाकिस्तान जाना स्वीकार किया। इसके बाद भी दोनों के संबंध में कोई बहुत बड़ी गिरावट नहीं आई। लेकिन धीरे-धीरे हिंदुओं को यह विश्वास हो गया कि मुसलमान लगातार अपने संख्याबल को बढ़ाना चाहता है। भारत का मुसलमान, पाकिस्तान गए हुए मुसलमान को गद्दार नहीं मानता। यहाँ तक कि भारत का मुसलमान, पाकिस्तान और बांग्लादेश से चोरी-छिपे भारत आने वाले मुसलमान का भी स्वागत करता है। भारत का मुसलमान, पाकिस्तान के ईशनिंदा कानून की भी कभी आलोचना नहीं करता, वह हर मामले में चुप रह जाता है। इस तरह हिंदुओं के मन में मुसलमान के प्रति धीरे-धीरे अविश्वास बढ़ता गया, लेकिन उस अविश्वास ने कभी घृणा का रूप नहीं लिया था। लेकिन जब से मुसलमान के द्वारा थूक मिलाकर धोखा देने की बातें सामने आईं और भारत के मुसलमान ने इन घटनाओं का न कभी कोई स्पष्टीकरण दिया और न खुलकर कोई विरोध किया, भारत का मुसलमान आमतौर पर ऐसे मामले में चुप रहा। स्पष्ट है कि भारत के हिंदुओं को मुसलमान से नफरत होने लग गई। उसी का परिणाम है कि आज मुसलमान को अपना नाम बदलकर होटल में काम करना पड़ रहा है। इस अविश्वास का कारण मुसलमान को खोजना चाहिए, हिंदुओं को नहीं। इसके समाधान के लिए भारत के मुसलमान को आगे आना चाहिए। उन्हें अब हिंदुओं को विश्वास दिलाना चाहिए कि हम लोगों से कुछ गलतियाँ हुई हैं और हम उन गलतियों का संशोधन करेंगे, लेकिन आज भी भारत का मुसलमान नेहरू परिवार अथवा अन्य विपक्षी दलों के चक्कर में पड़कर अपनी विश्वसनीयता को लगातार खराब करता जा रहा है और इसके परिणाम सामाजिक स्तर पर बहुत घातक होंगे। धार्मिक यात्राओं के नाम पर प्रत्यक्ष टकराव दिख रहा है। इसमें कहीं न कहीं हमारा सुप्रीम कोर्ट भी दोषी है। यदि सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में पक्षपात न किया होता, तो शायद इस तरह की घटनाओं को रोका जा सकता था। फिर भी भारत के मुसलमान को अब यह बात समझ लेनी चाहिए कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच में विभाजन मुसलमान के लिए घातक होगा। सुप्रीम कोर्ट और विपक्षी दल, हिंदू-मुस्लिम एकता में मुसलमान की सहायता नहीं कर पाएँगे। इसलिए यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि गलतियाँ हिंदुओं की तरफ से कम, मुसलमान की तरफ से अधिक हो रही हैं। और इस संबंध में मुसलमान को पहल करनी चाहिए।

3 : भारतीय राजनीति में विपक्षी दलों के लिए मुसलमान गले की हड्डी बन गए हैं। उनमें भी खासकर राहुल गांधी और कांग्रेस पार्टी के लिए तो यह पूरी तरह एक बहुत बड़ी समस्या है। कई महीनों से बेचारे राहुल गांधी बहुत मेहनत करके चुनाव आयोग पर पक्षपात का आरोप लगा रहे थे कि चुनाव आयोग ने महाराष्ट्र में बड़ी संख्या में फर्जी नाम जोड़ दिए और पूरे देश में भी चुनाव आयोग इस प्रकार कर सकता है। अब चुनाव आयोग ने जब यह निर्णय ले लिया कि 23 वर्षों में जो भी नए नाम जोड़े गए हैं, उन सब की जाँच कराई जाएगी, तो एकाएक सभी विपक्षी दलों को यह महसूस हुआ कि इस जाँच में तो बड़ी संख्या में विदेशी घुसपैठिए निकाल दिए जाएँगे। अब विपक्षी दल लगातार चिल्ला रहे हैं कि इस तरह की जाँच की जरूरत नहीं है। यह जाँच बिहार से शुरू हो रही है और राहुल गांधी भी बहुत परेशान नजर आ रहे हैं। क्योंकि राहुल गांधी के आकलन के अनुसार इसमें तो कई करोड़ मतदाता के नाम कट सकते हैं। 2003 के बाद यदि जाँच होती है, तो एक बहुत बड़ी समस्या बन जाएगी, क्योंकि लगातार भारत में 2003 के बाद भी विदेशी मुसलमान का आना जारी रहा है। इसलिए अब सभी विपक्षी दल एकजुट होकर इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि अगर इस तरह जाँच-पड़ताल हुई, तो करोड़ों विदेशी मुसलमान मतदाता सूची से बाहर रह सकते हैं और यह तो विपक्ष के लिए बहुत हानिकारक हो जाएगा। विपक्ष अभी जानता है कि मुसलमान किसी एक विपक्षी दल के साथ नहीं है, बल्कि मुसलमान तो सिर्फ उसी दल को चुनाव में मदद करता है, जो उस क्षेत्र विशेष में भारतीय जनता पार्टी को हराने की ताकत रखता हो। इसलिए हर विपक्षी दल में यह होड़ मची है कि हम कितना मुसलमान को खुश कर सकते हैं और कितना यह प्रमाणित कर सकते हैं कि बीजेपी को हराने में वे ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस तरह विपक्षी दल बीजेपी को हराने में किसी भी प्रदेश में एकजुट नहीं हैं, बल्कि सबकी अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग है और मुसलमान सबको प्रसन्न रखना चाहता

है, लेकिन सिर्फ उसी को देगा, जो हिंदुओं के खिलाफ जीतने लायक होगा। यहाँ तक कि मुसलमान किसी कमजोर मुस्लिम उम्मीदवार को भी वोट नहीं देता। यही एक पेच फँसा हुआ है और बेचारा चुनाव आयोग भी इस विपक्षी राजनीतिक संकट से परेशान है।

4 : यह हमारे लिए एक बड़ी चिंता की बात बन गई है कि एक तरफ कल लखनऊ शहर के एक दूध पहुँचाने वाले मुसलमान मोहम्मद शरीफ उर्फ पप्पू को दूध सप्लाई के पहले थूकते हुए हिरासत में लिया गया। दूसरी ओर हमारे भारत का सुप्रीम कोर्ट यह निर्णय देता है कि आप किसी भी दुकानदार को अपना वास्तविक नाम बताने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। तीसरी ओर हमारे काँवड़ियों को इस बात के लिए आंदोलन करना पड़ता है कि रास्ते में पड़ने वाले होटल मालिक अपने होटल में अपना वास्तविक मालिक का नाम लिखें। अब यह तीनों बातों को अगर एक साथ देखा जाए, तो सबसे बड़ा सवाल यह पैदा होता है कि हमारे सुप्रीम कोर्ट पर आँख बंद करके किस तरह विश्वास किया जाए। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि सुप्रीम कोर्ट में भी सिर्फ व्यक्ति जाते हैं, भगवान नहीं, लेकिन जब सुप्रीम कोर्ट अपने को भगवान मानता है, तब यह सवाल खड़ा होता है कि गलत सुप्रीम कोर्ट को भगवान मानने वाला अथवा अपने को भगवान कहने वाला। इस बात पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए कि कहीं-कहीं यदि सुप्रीम कोर्ट गलती करे, उस गलती पर प्रश्न करने का अधिकार किसके पास होना चाहिए। क्या हम यह मान लें कि सुप्रीम कोर्ट गलती करता ही नहीं है। क्या हम यह मान लें कि सुप्रीम कोर्ट के किसी निर्णय पर कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता है और यदि हम ऐसा मान लेते हैं, तो यह सवाल उठता है कि क्या भविष्य में हमें सुप्रीम कोर्ट की गलतियों के लिए भी कोई जन आंदोलन करना पड़ेगा। इस बात का उत्तर खोजा जाना चाहिए। यदि सुप्रीम कोर्ट स्वयं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता, तब कोई ऐसा तरीका खोजा जाना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट से इस प्रश्न का उत्तर कैसे प्राप्त किया जाए। साथ ही हमें इस प्रश्न का भी उत्तर खोजना होगा कि भारत का मुसलमान और उसके समर्थक अन्य विपक्षी नेता तो इस थूकने वाले दूधिए की घटना के विषय में बहरे बन गए हैं, लेकिन क्या पूरा समाज भी इस प्रश्न का उत्तर मुसलमान और विपक्षी नेताओं से जानने का कोई तरीका नहीं खोजेगा। हमें भगवान रूपी न्यायपालिका की गलती पर प्रश्न करने का अधिकार और लगातार थूकने वाले मुसलमान के समर्थन के विषय में चुप रहने वाले मुसलमान और विपक्षी नेताओं के उत्तर की प्रतीक्षा है।

5 : अभी उत्तर प्रदेश में छांगुर बाबा नाम के एक मुसलमान के नेतृत्व में चलने वाला एक ऐसा गिरोह का पता चला है, जो खाड़ी देशों के लिए भारत में रहकर धर्म परिवर्तन का कार्य करता था। उसे विदेश से करीब 100 करोड़ रुपये अब तक प्राप्त हो चुके हैं। इस मामले में आगे जाँच जारी है। अब तक यह माना जाता था कि भारत में मुसलमान की आबादी सिर्फ इसलिए बढ़ रही है, क्योंकि मुसलमान अन्य लोगों की तुलना में अधिक बच्चे पैदा करते हैं। दूसरा कारण यह माना जाता था कि मुसलमान को एक से अधिक शादियाँ करने की छूट दी गई है और दूसरी ओर हिंदुओं पर तथा अन्य अनेक लोगों पर इसकी रोक लगा दी गई है। तीसरा आरोप यह भी लगता था कि पाकिस्तान, बांग्लादेश, रोहिंग्या, अफगानिस्तान के मुसलमान चोरी-छिपे भारत में घुसकर आ जाते थे और वे धीरे-धीरे चोरी-छिपे भारत में अपना निवास बना लेते थे। उन्हें उस समय की सरकारें मदद भी करती थीं और उन्हें नागरिकता भी दे देती थीं। लेकिन यह बात मालूम नहीं थी कि विदेशी पैसे से भारत में रहने वाले कुछ लोगों को इस तरह एजेंट बनाकर गैर-मुस्लिम महिलाओं को मुसलमान बनाया जा रहा है। छांगुर बाबा का भेद खुलने के बाद एक रहस्य उद्घाटन हुआ। छांगुर बाबा महिलाओं को अधिक मुसलमान बनाता था, पुरुषों को कम। अब तो ऐसा भी संदेह होने लगा है कि कहीं हमारे भारत के राजनेता खाड़ी तथा अन्य मुस्लिम देशों से चोरी-छिपे धन लेकर ही तो उन्होंने हिंदू कोड बिल नहीं बनाया, क्योंकि यह संदेह बहुत पुख्ता होता है कि मुसलमान को चार शादी करने की छूट और हिंदुओं तथा कुछ अन्य लोगों पर प्रतिबंध, आखिर इस तरह का कानून बनाने की जरूरत क्या थी। छांगुर बाबा का भेद खुलने के बाद अब इस विषय को भी गंभीरता से परखा जाना चाहिए कि 10 वर्ष पहले की सरकारों ने खाड़ी युद्ध से पैसा लेकर क्या-क्या गुल खिलाए हैं। भारत में मुसलमान की बढ़ती आबादी के जो कारण खोजे गए, उनमें इस छांगुर बाबा की घटना का भी बहुत महत्व है। मुझे आश्चर्य होता है कि पोल खुलने से सारे विपक्षी दलों के नेताओं के मुँह पर ताला बंद हो गया है कि वे छांगुर बाबा के बारे में अब क्या बोलें। लगता है कि धीरे-धीरे यह मामला बहुत आगे तक जा सकता है।

6 : आमतौर पर भारत में दो संस्कृतियों के बीच सीधा टकराव देखने को मिल रहा है। एक तरफ है शरिया की संस्कृति, दूसरी तरफ है मनुस्मृति। इन दोनों के बीच में जो मानवता की संस्कृति को मजबूत होना चाहिए था, उस संस्कृति का तो कहीं नंबर ही नहीं है, क्योंकि शरिया और मनुस्मृति के बीच में ही सारी चर्चा आकर केंद्रित हो जाती है। इस संबंध में हम लोगों ने बहुत गहराई से विचार किया और यह पाया कि दोनों के बीच मानवता और धर्मनिरपेक्षता को स्थापित करना कठिन है, क्योंकि शरिया संस्कृति के पक्ष में नेहरू परिवार और साम्यवादी हिंदू डटकर खड़े हैं। यह नेहरू परिवार और कम्युनिस्ट कभी शरिया का समर्थन नहीं करते, शरिया के मामले में चुप रहते हैं, लेकिन यह खुलकर मनुस्मृति का विरोध करते हैं। स्पष्ट है कि दोनों का उद्देश्य शरिया का समर्थन करना ही है, भले ही वे शरिया के मामले में चुप हो जाते हों, लेकिन मनुस्मृति का विरोध करने से ही यह बात साफ हो जाती है कि उनकी नीयत बहुत खराब है। आप गंभीरता से सोचिए कि जो भी लोग, चाहे वे अंबेडकरवादी हों अथवा नेहरूवादी, यह मनुस्मृति का विरोध करने के बाद कभी शरिया का विरोध नहीं करते। आप कभी एक भी ऐसे नेहरू परिवार या अंबेडकरवादी को नहीं देखे होंगे, जो कभी शरिया का विरोध करता हो। क्योंकि शरिया के मामले में तो उनके मुँह में ताला बंद हो जाता है और मनुस्मृति को गाली देने के लिए ही वे दिन-रात उछलते रहते हैं। ऐसी स्थिति में हम लोगों के सामने यह संकट पैदा हो जाता है कि हम मनुस्मृति के पक्ष में खड़े हों या तटस्थ रहें, क्योंकि मनुस्मृति का विरोध करने वालों की नीयत खराब है और यह शरिया के पक्षधर हैं और हमारी ऐसी स्थिति में मजबूरी बन जाती है, क्योंकि हम मनुस्मृति और शरिया, इन दोनों के पक्ष में नहीं हैं, हम मानवतावादी हैं। सारी स्थिति पर गंभीरता से विचार करने के बाद हम लोगों ने यह महसूस किया कि यदि शरिया के पक्ष में किसी प्रकार का षड्यंत्र करने की कोशिश होती है, तो हम मनुस्मृति के पक्ष में भले ही खड़े हो जाएँ, लेकिन इस षड्यंत्र को सफल न होने दें। मनुस्मृति कुछ मामलों में गलत है और अनेक मामलों में सही है और शरिया सब मामलों में गलत है। इसलिए हम स्वतंत्र विचारक के रूप में पूरी तरह धर्मनिरपेक्षता का समर्थन करेंगे, लेकिन शरिया और मनुस्मृति का यदि कहीं सीधा टकराव होता है, तो हम शरिया का विरोध करेंगे, मनुस्मृति के मामले में चुप हो सकते हैं। यही सोचकर हम लोगों ने तय किया है कि हम शरिया का पूरी तरह विरोध करेंगे और धर्मनिरपेक्षता का समर्थन करेंगे।

साथियों की कलाम से :

सेवा और व्यवसाय – वैचारिक भिन्नता का मूल्यांकन

'सेवा और व्यवसाय' सदैव से ही व्यवहार में एक समान समझी जाने वाली समाज की प्रचलित अवधारणाएँ रही हैं, किंतु इनके मूल स्वरूप में गंभीर भिन्नता होती है। यह भिन्नता केवल व्यवहारिक नहीं, बल्कि वैचारिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक भी होती है। सेवा का मूलभाव त्याग और समर्पण है, जबकि व्यवसाय का आधार लाभ और संचय की प्रवृत्ति पर टिका होता है। जब इन दोनों को एक साथ साधने की चेष्टा की जाती है, तो न केवल दोनों की स्वायत्तता संकट में पड़ती है, बल्कि समाज की नैतिक संरचना भी विचलित हो जाती है।

सेवा, व्यक्ति की आत्मिक चेतना से उपजने वाला वह कर्म है जो निस्वार्थता, करुणा और समष्टि के प्रति उत्तरदायित्व से प्रेरित होता है। इसका उद्देश्य किसी प्रतिदान की अपेक्षा नहीं, बल्कि जीवन को सार्थक और समाज को सशक्त बनाना होता है। सेवा व्यक्ति को 'पुरुषार्थ' के उच्चतम स्तर की ओर ले जाती है, जहाँ वह स्वार्थपरता को त्यागकर लोकमंगल की भावना से जुड़ता है। यह जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक पक्ष को पुष्ट करती है।

इसके विपरीत, व्यवसाय एक ऐसी गतिविधि है जो इच्छाओं की पूर्ति, संसाधनों के दोहन और लाभ के अर्जन पर आधारित होती है। व्यवसाय का लक्ष्य मूलतः संचय और संपत्ति-सृजन होता है, जो व्यक्ति को आत्मकेंद्रित बनाता है। अक्सर व्यावसायिक गतिविधियाँ उस सामाजिक व्यवस्था को अनदेखा कर देती हैं जो समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की रचना के लिए आवश्यक होती है।

मैं पुनः कह रहा हूँ कि सेवा का आधार त्याग है, जोकि समाज में अत्यंत छिटपुट ही दिखता है; जबकि व्यवसाय यदि जीविका-प्राप्ति से तनिक भी आगे बढ़ता है, तो संचय की प्रक्रिया सिद्ध हो जाता है, और संपूर्ण समाज में यही तथ्य चरितार्थ हो रहा है। सेवा समाज को जोड़ती है; व्यवसाय अक्सर सामाजिक विषमता को जन्म देता है। सेवा में उत्तरदायित्व प्रमुख होता है, जबकि व्यवसाय में अधिकार प्रमुख हो जाता है। यह स्पष्ट है कि 'पुरुषार्थ' और 'धन' को एक साथ साधना एक दुष्कर कार्य है—जैसे ही व्यक्ति किसी एक को चुनता है, दूसरा हाथ से फिसल जाता है।

इतिहास को एक तरफ रखकर समकालीन लोकहितकारी राष्ट्र/राज्य की नीतियों का अवलोकन करें, तो यह भी इस अंतर के दुष्प्रभावों को समझने में असमर्थ रहे हैं। अनुभव में यह आया है कि दुनिया भर के देशों की सरकारें निरंतर 'सेवा और व्यवसाय' के समन्वय का प्रयास करती रही हैं; जैसे कि सार्वजनिक सेवाओं का सरकारीकरण के स्थान पर सामाजीकरण होना चाहिए, लेकिन निजीकरण किया जा रहा है। बाज़ार के माध्यम से लोकसेवा का निष्पादन किया जा रहा है, व्यक्ति की मौलिक स्वतंत्रता को रोककर उसे स्वयं से संरक्षित सुविधाओं का दास बनाना तथा अनावश्यक आर्थिक तथा राजनीतिक वर्चस्व के प्रयास जैसे कार्य किए जा रहे हैं। विभिन्न सरकारों की ऐसी कार्यप्रणाली ने सेवा की पवित्रता को क्षीण किया है और व्यवसाय की सीमाओं को धुंधला बना दिया है। सेवा अब 'लाभ की नीति' बनकर रह गई है। अब इसमें भावनात्मक पुट का सर्वथा अभाव मिलता है। यही कारण है कि आज अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ केवल संख्यात्मक समृद्धि को महत्वपूर्ण मानती हैं और मानवीय मूल्य, सामाजिक संतुलन तथा नैतिक उद्देश्य उपेक्षित हो गए हैं। यह संकट केवल सामाजिक नहीं है, बल्कि सत्ता-निर्माण का इससे गहरा संबंध है। व्यक्ति, सरकार और यहाँ तक कि सामाजिक संस्थाएँ भी अपने कार्यों को सेवा का आभास देकर अपने व्यावसायिक उद्देश्यों को वैध ठहराना चाहती हैं। ऐसी छद्म 'सेवा का मुखौटा' आज सत्ता में टिके रहने का एक सशक्त उपकरण बन चुका है। फलस्वरूप सेवा का आदर्श, जिसे समाज को सशक्त बनाना था, अब एक मज़ाक बनकर रह गया है और व्यवसाय को सेवा कहा जाने लगा है। व्यक्ति की इस धारणा ने ही इसे प्रभुत्व का प्रतीक बना दिया है और इसी का परिणाम है कि मानव सभ्यता के अस्तित्व पर परमाणु युद्ध का खतरा मंडरा रहा है।

इस वैचारिक और व्यवहारिक संकट से उबरने के लिए सरकार नहीं, बल्कि समाज को पहल करनी होगी। समाज को यह पहचानना होगा कि सेवा और व्यवसाय की प्रकृति भिन्न है—एक की वैचारिक बुनियाद नैतिक चेतना है और दूसरे की आर्थिक हित। समाज को सशक्त बनाने के लिए 'सेवा' का स्वरूप उसके बुनियादी मानदंड के अनुसार निर्मित करना होगा और व्यवसाय को नीति-नियोजक बनने से रोकना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि:

1. शिक्षा प्रणाली की वैचारिक बुनियाद केवल व्यावसायिक न हो।
2. व्यक्ति की सामाजिक चेतना का संवर्धन होता रहे।
3. नीति और भावना के मौलिक दृष्टिकोण को समझा जाए।
4. सत्ता, सेवा और व्यवसाय के संबंध को पुनः परिभाषित किया जाए।

वस्तुतः सेवा और व्यवसाय, दोनों ही समाज-निर्माण के अपरिहार्य उपकरण हैं; किन्तु जब सेवा व्यवसाय बन जाए और व्यवसाय सत्ता प्राप्ति का साधन, तब समाज का बुनियादी ढांचा ध्वस्त हो जाता है। इन दोनों विषय-वस्तुओं की ऐसी धारणाएँ समाज में भ्रम पैदा करती हैं और विनाशकारी सिद्ध होती हैं। इस भ्रामक स्थिति से निकलने का मार्ग केवल नीति-निर्धारण से तय नहीं हो सकता है, बल्कि इसमें व्यक्ति की चेतना और समाज का संरक्षण भी आवश्यक है। समाज में कोई यथार्थपरक व्यवस्था बनाने के लिए व्यक्ति का चरित्र, समाज का संरक्षण और राज्य का परिस्थितिजन्य नीति-नियोजन आवश्यक होता है। यह कार्य सहजता से होता रहे—इसके लिए सेवा की मर्यादा समाज तय करे और व्यवसाय में यदि उद्दंडता हो तो उसे राज्य नियंत्रित करे। इन दोनों विषय-वस्तुओं का समन्वय सहज नहीं हो सकता है। लेकिन व्यक्ति मात्र अपने दायित्व की मर्यादा समझे, तो यह असंभव-सा दिखने वाला कार्य भी संभव हो सकता है।

नरेन्द्र सिंह

एक विमर्श : क्या भगवा आतंकवाद एक सुनियोजित राजनीतिक प्रपंच था?

ज्ञानेन्द्र आर्य

मालेगांव विस्फोट कांड में वर्षों तक आरोप झेलने के बाद जिन निर्दोषों को अब न्याय मिला है, उनके चेहरों पर राहत है — लेकिन उनके शरीर पर यातना के घाव और मन में गहरे जख्म आज भी रह गए हैं। सवाल यह नहीं है कि वे बेक़सूर निकले, सवाल यह है कि अगर उनके नाम "जगदीश सिंह", "वरुण मिश्र" या "राहुल त्रिपाठी" होते, तो क्या उन्हें भी किसी साजिश का हिस्सा बना दिया जाता?

इन वर्षों में एक पूरा नैरेटिव रचा गया — जिसमें यह साबित करने की कोशिश हुई कि देश का बहुसंख्यक समुदाय ही अब 'आतंकवादी' है। इसे 'भगवा आतंकवाद' कहा गया। यह शब्द अपने आप में ही एक गहरी सांप्रदायिक और राजनीतिक चाल है, जो लाखों वर्षों की सांस्कृतिक विरासत और करोड़ों लोगों की धार्मिक पहचान को अपराध के कटघरे में खड़ा करता है।

गोधरा ट्रेन कांड का उदाहरण लीजिए — जहां कारसेवकों को जला दिया गया। बाद में इसे भी इलेक्ट्रिक शॉर्ट सर्किट साबित करने की कोशिशें हुईं। क्यों? क्या इसलिए कि सच स्वीकारना राजनीतिक रूप से असुविधाजनक था? या इसलिए कि मजहबी आतंकवाद को धर्म से काटकर एक 'विक्टिम नैरेटिव' तैयार करना था — ताकि देश के संसाधनों पर पहला हक उसी वर्ग को दिया जा सके?

यह सिर्फ राजनीति नहीं, एक गहरी और भयावह सामाजिक इंजीनियरिंग है — जिसमें बहुसंख्यक समाज को उसकी ही भूमि पर दोषी, हिंसक और अराजक साबित करने का सुनियोजित प्रयास हुआ।

देश में एक ऐसी स्थिति बना दी गई कि अगर कोई हिन्दू अपने साथ हुए अन्याय की बात करे, तो उसे सांप्रदायिक घोषित कर दिया जाए। ऐसी स्थिति में या तो वह चुपचाप सब कुछ सहता रहे, धर्म परिवर्तन कर ले, या अपने जीवन से ही हार मान ले।

यह मात्र एक पार्टी या सरकार की बात नहीं है। यह उस मानसिकता की बात है जो स्वतंत्रता सेनानियों की विरासत को हथिया कर उस पर राजनैतिक सौदेबाज़ी का खेल खेलती रही है। जब देश का गृहमंत्री, मुख्यमंत्री और 'शहीदों की पार्टी' इस षड्यंत्र का हिस्सा बने, तो यह केवल एक राजनीतिक आरोप नहीं, एक राष्ट्रीय संकट है।

आज मालेगांव मामले में सच सामने आ गया है। लेकिन जो लोग कल इस 'भगवा आतंकवाद' के झूठे प्रचार के सह-यात्री थे — वे आज क्या करेंगे? क्या वे आत्ममंथन करेंगे? या फिर अगला नैरेटिव तैयार करने लगेंगे, ताकि एक समुदाय विशेष को हमेशा कटघरे में खड़ा रखा जा सके?

अंत में सवाल यही है:

क्या अब भी हिन्दू समाज को अपनी ही मिट्टी में अपराधबोध के साथ जीना होगा? या अब सत्य के आधार पर एक नया संवाद शुरू होगा — जिसमें दोषी को दोषी और निर्दोष को निर्दोष माना जाएगा, धर्म या जाति देखकर नहीं?

ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

1: भारत मे आमतौर पर यह माना जाता है कि संपूर्ण व्यवस्था का दोषी समाज है। राजनेता, पूंजीपति, बुद्धिजीवी आदि समाज को सारी बुराइयों की जड़ मानते हैं। अगर गहराई से देखा जाए तो हम पाते हैं कि अव्यवस्था के लिए समाज नहीं बल्कि संविधान दोषी है। संविधान समाज का प्रतिनिधि होता है। राज्य संविधान के माध्यम से समाज को न्याय और सुरक्षा प्रदान करता है। कानून का निर्माण संविधान की आदर्श और विचारधारा के आधार पर ही होता है। राज्य ने अनर्गल कानून बनाकर सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप किया है। इसके कारण हमारा समाज विघटित हो रहा है। राज्य ने संवैधानिक व्यवस्था के माध्यम से ही समाज पर अधिकार कर लिया है। तब इसके लिए समाज को दोषी ठहराना सही नहीं है।

दुनिया में चार प्रकार की व्यवस्थाएं हैं- पश्चिम का लोकतंत्र, इस्लाम का धर्म तंत्र, साम्यवाद का राज्यतंत्र और वैदिक काल की सामाजिक व्यवस्था। दुर्भाग्य यह रहा कि हमारी संवैधानिक व्यवस्था ने लोकतंत्र, धर्म तंत्र और राज्य तंत्र को तो अपना लिया मगर भारतीय सामाजिक व्यवस्था को बिल्कुल नकार दिया। इसी वजह से हमारा संविधान सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने में बिल्कुल असफल रहा है।

एक बात गौर करने लायक है कि हमारे संविधान निर्माता में मौलिक चिंतन का सर्वथा अभाव था। उन्हें अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र की तो समझ थी परंतु भारतीय धर्मशास्त्र और समाज की नहीं। हमारे संविधान में बहुत से प्रावधान 1935 के भारत शासन अधिनियम से लिए गए हैं। इसके अलावे अन्य देशों के संविधान से भी बहुत कुछ लिया गया है। किसी राजनीतिक विचारक ने भारतीय संविधान को गोंद और कैंची का खिलवाड़ कहा है। हमारे संविधान निर्माता या तो राजनीति शास्त्री थे या अधिवक्ता। उनमें समाजशास्त्र के ज्ञान का बिल्कुल अभाव था। यही कारण रहा कि संविधान समाज से पूरी तरह से उदासीन हो गया। लोकतांत्रिक व्यवस्था में अंतिम निर्णायक तो समाज ही होता है। परंतु दुर्भाग्य से समाज पर राज्य या तंत्र का अधिकार हो गया है। आज राज्य के द्वारा समाज को पूरी तरह हाशिये पर डाल दिया गया है। हाल ही में विभिन्न उच्च न्यायालयो द्वारा दिए गए फैसलों के आलोक में वार्ता की गई।

साल 2006 में मुंबई में लोकल ट्रेनों में सिलसिलेवार बम धमाके हुए। इन धमाकों में 187 लोग मारे गए और सैकड़ो घायल हुए। साल 2015 में मकोका की विशेष अदालत ने 12 अभियुक्तों को सजा सुनाई थी। जुलाई 2025 में मुंबई उच्च न्यायालय ने सभी अभिव्यक्तियों को बड़ी कर दिया। इसके साथ 12 लोगों को रिहा करने का आदेश भी दिया। दूसरा निर्णय कर्नाटक उच्च न्यायालय के द्वारा दिया गया। मई 2025 में कर्नाटक के किसी मंदिर में तीन मुस्लिम युवक अपने मजहब का प्रचार कर रहे थे। इसी बात पर उनके विरुद्ध प्राथमिक दर्ज कराई गई थी। जुलाई 2025 में कर्नाटक सरकार ने उनके खिलाफ की गई प्राथमिकी यह कहकर खारिज कर दी कि मंदिर में इस्लाम का प्रचार हो सकता है।

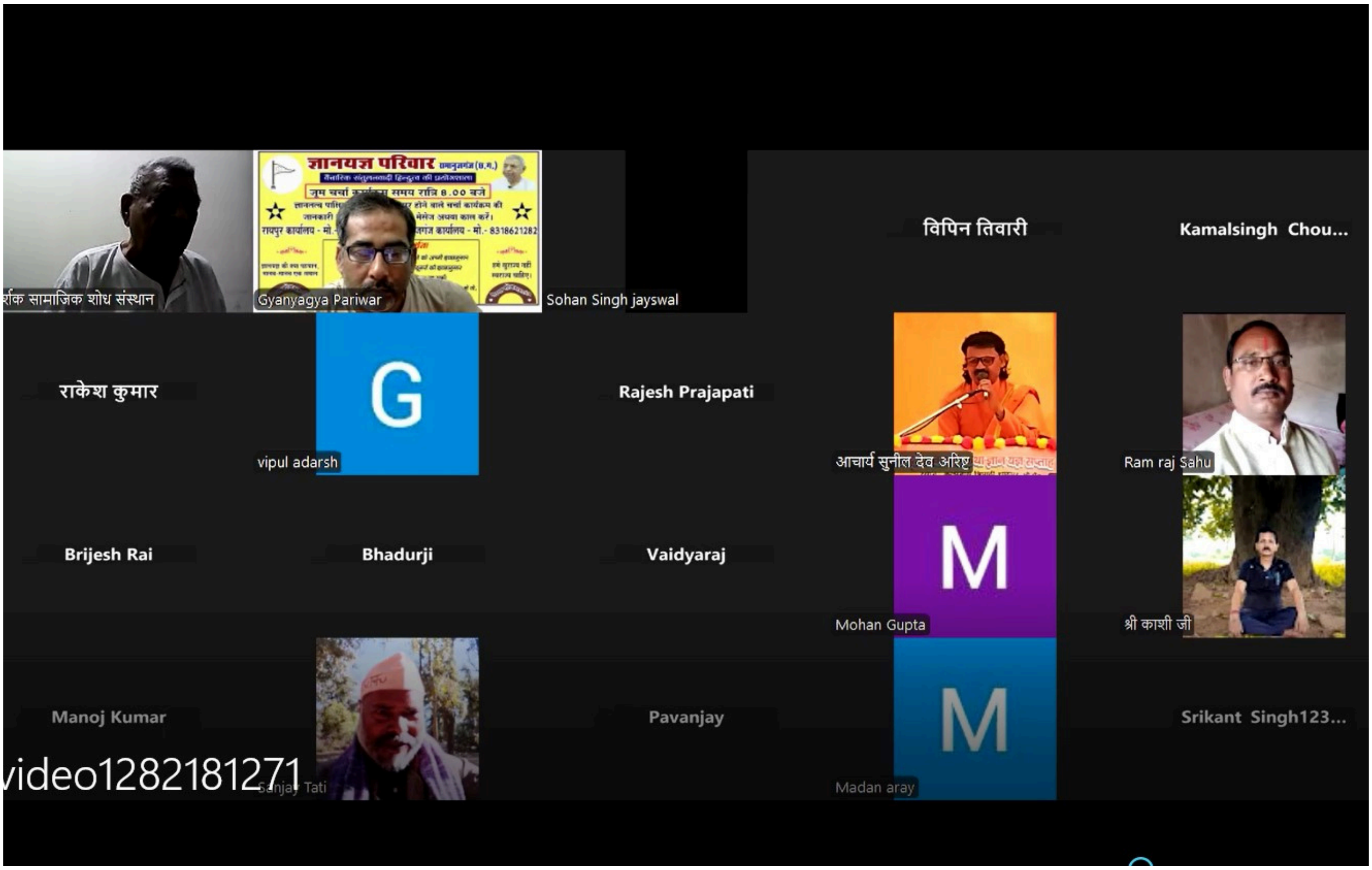

उपर्युक्त निर्णयो पर गहराई से विचार करने पर हम पाते हैं कि भारतीय न्यायपालिका कहीं ना कहीं सनातन और भारतीय मूल्यों के खिलाफ है। मुंबई बम धमाके में मौत की सजा पाए याकूब मेमन की सजा टालने के लिए सर्वोच्च न्यायालय रात में सुनवाई करता है। कश्मीरी पंडितों ने साल 2017 में 1990 में हुए विस्थापन के लिए जिम्मेदार लोगों पर कार्रवाई करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। न्यायालय ने उनकी याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यह मामला अब बहुत पुराना हो चुका है। इस तरह के मामले हमेशा आते रहते हैं जो इस देश की बहुसंख्यक आबादी और संस्कृति के खिलाफ हैं। भारतीय न्यायपालिका आरंभ से ही वामपंथी विचारधारा से प्रभावित रही है। अपने इसी वामपंथी झुकाव के कारण न्यायपालिका इस तरह की हरकत करती है।

2: वर्तमान संविधान में समानता की प्रचलित परिभाषा गलत है। असमानता प्राकृतिक है। इसे मानवीय हस्तक्षेप के माध्यम से दूर करना गलत है। हर व्यक्ति का व्यक्तित्व एक दूसरे से अलग होता है। रूप-रंग, गुण, स्वभाव, योग्यता, क्षमता, कर्म इत्यादि में मनुष्य एक दूसरे से भिन्न होता है। इसके बावजूद अगर हम सबको समान करने का प्रयास करते हैं तो यह मूर्खता है। स्त्री- पुरुष के बीच में समानता लाने का प्रयास निरर्थक है। स्त्री-पुरुष शारीरिक और भावनात्मक रूप से एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। दोनों की ज़रूरतें और भूमिका भी अलग-अलग हैं। आज भारत राज्य के द्वारा स्त्री और पुरुष को समान करने की बात भारतीय सामाजिक व्यवस्था को जबरदस्त नुकसान पहुंचा रही है। समानता का अर्थ राज्य और नागरिकों के बीच आपसी व्यवहार से है। व्यक्तियों के आपसी व्यवहार में समानता ढूंढना उचित नहीं है। उदाहरण के लिए सामाजिक रूप से एक निश्चित पदानुक्रम का पालन होता है। परिवार में बुजुर्ग और युवा के अधिकारो में काफी अंतर होता है। ठीक उसी तरहमालिक और नौकर के बीच भी असमानता होती है। व्यावहारिक रूप से इस तरह की असमानता मे कुछ भी गलत नहीं है। राज्य को अपने नागरिकों के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिए जो कि उसका दायित्व है।

अधिकारों की असमानता सामाजिक और आर्थिक असमानता से कहीं अधिक घातक है। एक धनवान व्यक्ति सामान्य जन के लिए उतना घातक नहीं है जितना कि एक तानाशाह। तानाशाह के पास सैनिक, प्रशासनिक, राजनीतिक शक्तियां होती हैं जिनके माध्यम से वह सामान्य जन के अधिकारों का हनन कर सकता है। आर्थिक और सामाजिक असमानता दूर करना मजबूत लोगों का कर्तव्य है कमजोरों का अधिकार नहीं। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद आर्थिक और सामाजिक समानता कमजोर वर्ग का अधिकार मान लिया गया है। राज्य का कार्य व्यक्ति को सुरक्षा और न्याय के माध्यम से उसकी स्वतंत्रता को कायम रखना है। अधिकारों की समानता पर खुलकर बात होनी चाहिए जो नहीं होती। चर्चा में शामिल वक्ताओं ने अपनी बात को स्वतंत्रता पूर्वक रखा। विचार मंथन सार्थक एवं उद्देश्य पूर्ण रहा जो बौद्धिक चेतना की वृद्धि में सहायक है।

गतांक से आगे ...

जीवन पथ

इस विषय को इस दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता नहीं है आदित्य। बल्कि हमे विचार करना चाहिए कि यदि राज्य समाज को न्याय व सुरक्षा देना चाहता है तो समाज के शक्ति-सम्पन्न होने में कोई हर्ज नहीं है और यदि राज्य, लोक व्यवस्था की स्थापना की घोषणा करने के बाद भी समाज को अपनी प्रजा ही मानें बैठा है तब तो समाज को गुमराह करने के लिए वह जनहित के नाम पर कानूनों का जाल बुनेगा ही। ....क्योंकि हमे राज्य की अपेक्षा समाज के शक्तिशाली होने का यह कारण सिद्ध नहीं करना है कि वह राज्य से युद्ध करेगा। इस परिस्थिति में हमे केवल समाज की मूल स्वतन्त्रता को सिद्ध करना है इसके अतिरिक्त और कुछ नही। ....विवेक अपना स्पष्टीकरण पूरा करता है तो आदित्य उससे गम्भीरता पूर्वक कहता है- हाँ कुछ ऐसा ही होता हुआ महसूस होता है। भारत में व्यवस्था के नाम पर राज्य ने यह सब किया है। जाति, धर्म, उम्र, लिंग, क्षेत्र, भाषा, गरीब-अमीर, उत्पादक-उपभोक्ता आदि समाज का विघटन करने वाले विषयों को विधि सम्मत मान्यता देकर सब कुछ दिशाहीन कर दिया है। यूँ तो समाज के अधिकार क्षेत्र में राज्य के अतिक्रमण की 'बू' आती है! और मैं इस विषय पर शोध कार्य करना चाहता हूँ ताकि समाज को स्पष्टता पूर्वक राज्य द्वारा उसके साथ किए जाने वाले छल से अवगत कराया जा सके। ऐसा कुछ होना तो चाहिए। क्योंकि मन में कई बार यह प्रश्न उठता है कि भारत में लोक द्वारा स्थापित व्यवस्था में लोक, तन्त्र का गुलाम क्यों है?

राज्य के इसी उच्छृंखल स्वभाव का हमें समाधान खोजना होगा। समाज स्वाभाविक रूप से तन्त्र की स्थापना का कारक भी है और नियन्त्रणकर्ता भी। निश्चित रूप से ऐसा होना भी चाहिए। हमे समाज के सामने यह तथ्य स्पष्ट करना होगा।

लेकिन हमारे देश में ऐसा क्यों हुआ? कुछ क्षण चुप रहकर आदित्य उससे पुनः पूछता है। क्योंकि भारत की राजनीतिक व्यवस्था का ढाँचा गलत है! क्या राजनीतिक ढाँचे का मतलब संविधान से भी जुड सकता है? हाँ! हमे इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन कैसे? हमारा संवैधानिक ढाँचा गलत है! यह कोई सरल आक्षेप नहीं है मेरे भाई। इस बारे में तेरा स्पष्टीकरण क्या होगा?

भारत की व्यवस्था का संवैधानिक ढाँचा गलत है अथवा हम यह कहें कि हमारा राजनीतिक व्यवस्था का ढाँचा गलत है, यह किसी काम का नहीं है, इस आक्षेप को सिद्ध करने के लिए मैं एक स्पष्टीकरण समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मूलतः मैं किसी संकोच या उथले कारण से अपने मन में पाला हुआ क्रोध समाज के सामने प्रस्तुत नहीं करना चाहता हूँ। मेरा मानना है कि व्यक्ति की ऐसी कोई धारणा, तर्क का आधार नहीं होती है! मैं तो संविधान शब्द के प्राकृतिक तात्पर्य और भारत में व्यवस्था के रूप

में लागू किए गए संविधान के अन्तर्गत राज्य द्वारा की गयी व्यवस्था के आए हुए परिणाम का विश्लेषण करता हूँ कि यह सब क्या है? देश में संवैधानिक व्यवस्था स्थापित है और देश की व्यवस्थागत (राज्य) स्थिति क्या है यह किसी से छुपा नहीं है! दोनों में आन्तरिक साम्यता होनी चाहिए क्योंकि व्याकरण की दृष्टि से देखें तो संविधान शब्द की उत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग तथा 'विधान' के योग से हुई है। तद्नुसार 'सम+विधान' = संविधान। सम् का अर्थ है समान, पक्षपात रहित इत्यादि तथा विधान का अर्थ नियम, व्यवस्था इत्यादि होता है। इस आधार पर संविधान शब्द की यह व्याख्या सिद्ध होती है कि किसी इकाई (समाज) द्वारा निर्मित व्यवस्था की ऐसी नियम संहिता जो उस इकाई में निहित सभी मौलिक इकाईयों (व्यक्ति) से समान व्यवहार करे तथा आवश्यकतानुसार उन्हें पक्षपात रहित अथवा यथार्थ के अनुसार व्यवहार करने के लिए बाध्य करे। अर्थात् समाज का जो दृष्टिकोण उसकी संरचना की आवश्यकता के अनुसार व्यवस्था करने में सहायक होता है वह संविधान की रचना में सहायक और उसके विस्तार का अंश बनता है। इसलिए व्यवस्था के संवैधानिक प्रपत्र (दस्तावेज) का यह अर्थ सिद्ध होता है कि जिस प्रपत्र में विधि का सम्यक् विन्यास होता है, वह संविधान कहलाता है। प्रपत्र में स्थापित असामयिक दृष्टिकोण उसके संवैधानिक स्वरूप को नष्ट कर देते हैं। भारतीय संविधान के उपबन्धों में अब यह दोष देखने को मिलता है। इसलिए भारत में स्पष्टतः राजनीतिक अराजकता स्थापित हो गयी है! कब, कहाँ, क्या हो जाए और जो होने वाला कार्य है कभी हो ही न! इस देश का कोई भी निवासी अक्सर यह बात कहता रहता है, ऐसा क्यों है? ....क्योंकि संविधान शब्द कोई साधारण रचना नहीं है। इसके शाब्दिक अर्थ में गूढता है। यह केवल विधिक सामग्री का कागजी पुलिंदा नहीं होता है बल्कि यह व्यवस्था के सन्दर्भ में कही जाने वाली समाज की इच्छा का विधिक रूप होता है। व्यवस्था की स्थापना हेतु संविधान में स्थापित किए गए प्रावधानों का पालन अनिवार्य होता है अन्यथा उसकी पूर्णता का अर्थ समाप्त हो जाता है; लेकिन भारतीय व्यवस्था की संवैधानिक स्थिति असफल है। ....मैं पुनः कहता हूँ कि ऐसा क्यों है? इस क्यों का उत्तर मैं एक उदाहरण से देना चाहता हूँ।

संस्थागत समाचार

वरिष्ठ चिंतक रोशन लाल अग्रवाल का निधन, 50 वर्षों की वैचारिक मित्रता का अंत

अंबिकापुर के वरिष्ठ चिंतक और सामाजिक विमर्श के सशक्त स्तंभ रोशन लाल अग्रवाल का सोमवार रात लगभग 9 बजे निधन हो गया। वे लगभग 74 वर्ष के थे और पिछले कुछ महीनों से अस्वस्थ चल रहे थे। मूल रूप से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा से प्रेरित रोशन लाल जी समय के साथ गंभीर बौद्धिक मंथन के माध्यम से वामपंथी विचारधारा की ओर उन्मुख हुए। वे तर्कप्रधान और गंभीर चिंतक माने जाते थे।

उनके निधन से उनके घनिष्ठ मित्र और लंबे समय से सामाजिक चिंतन में साथ देने वाले साथी ने गहरा दुख व्यक्त किया है। उन्होंने बताया कि आपातकाल के बाद जब लोकतंत्र पुनः स्थापित हुआ, तब तीन घनिष्ठ मित्र—केशव चौबे, वे स्वयं और रोशन लाल अग्रवाल—ने सामाजिक व्यवस्था को लेकर गहन विमर्श आरंभ किया। तीनों की पृष्ठभूमि संघ से जुड़ी थी और उन्होंने मिलकर लगभग 15 वर्षों तक दिन-रात सामाजिक समस्याओं के समाधान की खोज में बिताए। उनके चिंतन का सार पांच सूत्रों में निकला—(1) अपराध नियंत्रण की गारंटी, (2) लोक स्वराज, (3) आर्थिक असमानता में कमी, (4) श्रम सम्मान की वृद्धि, और (5) समान नागरिक संहिता। मतभेद तब उत्पन्न हुए जब इन समाधानों में प्राथमिकता तय करनी थी। 1992 में केशव चौबे समान नागरिक संहिता को सर्वोच्च मानते हुए विश्व हिंदू परिषद से जुड़ गए। शेष दो साथी—रोशन लाल जी और लेखक—एक वर्ष और साथ रहे, जब तक गांधीवादी चिंतक रुद्र नारायण सिंह के जुड़ने से विमर्श की दिशा लोक स्वराज की ओर मुड़ गई।

इसके बाद रोशन लाल जी आर्थिक असमानता को सर्वोच्च मानते हुए अलग राह पर चल पड़े और धीरे-धीरे पूर्ण वामपंथी बन गए। 2000 तक वे पूरी तरह अलग हो चुके थे, जबकि लेखक और रुद्र नारायण सिंह गांधीवादी मार्ग पर कार्यरत रहे। लेखक ने यह भी कहा कि केशव चौबे जहां अतिवादी दक्षिणपंथ की ओर बढ़े, वहीं रोशन लाल जी अतिवादी वामपंथी बनते चले गए और वे स्वयं मध्य मार्ग पर बने रहे। उनका अनुभव यह भी रहा कि वामपंथी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति अंततः अपने समाज, मित्रों, परिवार और यहां तक कि स्वयं से भी असंतुष्ट हो जाते हैं।

रोशन लाल जी का जीवन अत्यधिक अनुशासित और चिंतनशील रहा। वे प्रतिदिन सुबह 3 बजे जागकर लेखन और अध्ययन में लग जाते थे, भले ही उनका शरीर उस स्थिति में न रहा हो। वे समाज को बदलने की गहरी जिद रखते थे, परंतु अंत समय में अकेले होते चले गए। उनका जाना न केवल एक मित्र का वियोग है, बल्कि एक वैचारिक युग की समाप्ति भी है। लेखक ने उन्हें भावभीनी अंतिम विदाई अर्पित की है और उनके समर्पणपूर्ण जीवन को समाज के लिए प्रेरणा बताया है।